6-3

वैद्यावतंसः

[लघुनिघण्टुः]



व्याख्याकारः

ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

श्री मल्लोलिम्बराजप्रणीतः

वैद्यावतंसः

[लघुनिघण्टुः]

"पदार्थ-प्रकाशिनी" हिन्दी-व्याख्या सहितः

•

व्याख्याकारः—

ब्रह्मानन्दत्रिपाठी एम० ए०

साहित्याचार्यः, आयुर्वेदाचार्यः

•

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना

प्रकाशक—

सुन्दरलाल जैन
मोतीलाल बनारसीदास
पो० ब० ७५, नेपालीखपरा
वाराणसी

प्रथम संस्करण १९६७
मूल्य १.५०

मुद्रक—
केशव मुद्रणालय
पांडेपुर पिसनहरिया
वाराणसी, कैंट

भूमिका

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग होने के कारण शाश्वत है। यह आयुर्वेद शास्त्र चिकित्सा के प्रकार-भेद से शल्य, शालाक्य आदि आठ अंगों में विभक्त है। इसका मूल उद्देश्य है—स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगी के रोग का चिकित्सा द्वारा प्रशमन करना। उक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिये मूलतः इसके दो माध्यम दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम—रसौषधियों का प्रयोग, द्वितीय—वनौषधियों का प्रयोग। यद्यपि उपर्युक्त दोनों प्रकार की औषधियों का सम्यक् परिचय हमारे आयुर्वेदीय संहिता-ग्रन्थों में वर्णित निघण्टुसाहित्य में भी उपलब्ध होता है किन्तु वह दिशामात्र है। अतएव हमारे प्राचीन आचार्यों ने विविध निघण्टुओं का निर्माण किया, जिनमें स्थावर, जङ्गम सभी प्रकार के द्रव्य समूह का विशद विवेचन प्राप्त होता है।

आयुर्वेद में निघण्टुओं का स्थान

द्रव्यों की वैज्ञानिक गवेषणा—निघण्टुशास्त्र चिकित्सा का पोषक अंग है। तप एवं ज्ञानबल से पवित्र तथा दिव्य दृष्टि वाले हमारे महर्षियों ने आज से सहस्रों वर्ष पूर्व आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार वनौषधियों के जिन रस गुण वीर्य विपाकादियों का वर्णन किया था वे आज भी उतने ही सत्य हैं। इस गवेषणा को देख आज के वैज्ञानिक आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। कुछ द्रव्यों के सम्बन्ध में वर्णित गवेषणायें आज भी ऐसी हैं जो वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं के वश की बात नहीं है, यथा-द्रव्यों में पायी जाने वाली शक्ति अथवा वीर्य की अचिन्त्य क्रिया। आजकल वैज्ञानिक-समाज गुलबनफशा के पीछे पड़ा हुआ है कि इसमें प्रतिष्यायहरत्व गुण क्या अथवा कौन-सा है, किन्तु अभी तक उसका पता नहीं लगा पाया। वास्तव में गुलबनफशा की पिच्छिलता[1] ही प्रतिष्याय-

---

१—पिच्छिलः समशीतोष्णो दाहपित्तज्वरापहः ॥ यूनानी निघण्टु ॥

नाशन में कारण है, पाठक ध्यान दें! वातादि जनित प्रतिष्यायों में घृतपान तथा उड़द आदि के सेवन का विधान पिच्छिलता की दृष्टि से ही शास्त्रों में वर्णित है, अस्तु। जहाँ तक सन्दिग्ध औषधि-निर्णय का प्रश्न है वह अवश्य जटिल है। इसके लिये पर्याप्त समय, परिश्रम तथा शोध की आवश्यकता है।

औषधि ग्रहण कालनिर्देश—वनौषधियों की उत्पत्ति, विकास अथवा पुनः नवीनीकरण प्रायः वसन्त ऋतु से आरम्भ हो जाता है। वसन्त ऋतु से लेकर शरद् ऋतु तक के दीर्घकाल में उनके उपयोगी अंगों का पोषण हो जाता है, अतएव औषधियों का ग्रहणकाल शरद्[1] ऋतु को माना है। यह ग्रहण = संग्रहण-काल है, अर्थात् शरद् ऋतु में संग्रह की गई वनौषधियां वर्ष पर्यन्त रखी जा सकती हैं। वमन तथा विरेचनोपयोगी औषध द्रव्यों का आहरणकाल वसन्त ऋतु को माना है। यहाँ पर 'वसन्तान्ते' शब्द से वसन्त ऋतु के आरम्भ काल से लेकर अन्ततक के काल का ग्रहण करना चाहिये। वाम्बी[2], अपवित्र स्थान, श्मशान, ऊषरभूमि अथवा मार्ग के आसपास उत्पन्न, कीड़ों से खायी हुई, आग से झुलसी हुई या शीत, बर्फ, पाला आदि से विकृत औषधियों का उपयोग नहीं करना चाहिये।

द्रव्य परिचय—औषधि परिचय के दो भेद हैं, १—परिचयात्मक = जिसके द्वारा नाम तथा रूपों का ज्ञान हो, २—प्रयोगात्मक-जिसके द्वारा उनके गुण, वीर्यादि तथा प्रयोग का ज्ञान हो। परिचयात्मक तथा प्रयोगात्मक ज्ञान वाले चिकित्सक को चरक ने 'तत्व[3]वित्' कहा है। इनके नाम–रूपादि परिचय की

१—शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम्।
विरेकवमनार्थन्तु वसन्तान्ते समाहरेत् ॥ भा० प्र० मिश्रवर्ग ॥

२—वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः।
जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः ॥ वही ॥

३—योगविन्नामरूपज्ञस्तासां तत्त्वविदुच्यते।
किं पुनर्योविजानीयादोषधीः सर्वदा भिषक् ॥

सहायता वनवासी[1] तथा गाय, भेड़, बकरी पालने (चराने) वालों से प्राप्त हो सकती है अथवा लेनी चाहिये।

प्रत्येक द्रव्य में एक प्रधान तथा अन्य सहयोगी रस होते हैं और यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक द्रव्य[2] में एकाधिक रस तथा गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव रहते हैं। वाग्भट के मतानुसार द्रव्यों में रहने वाले, १—मीठा, २—खट्टा, ३—नमकीन, ४—तीता, ५—कड़ुआ तथा ६—कसैला रस यथापूर्व (कसैला की अपेक्षा कटु-कटु की अपेक्षा तिक्त आदि) बल[3] वर्द्धक होते हैं। मधुर आदि रसों के गुणों का विशद-विवेचन ग्रन्थान्तरों में देखें। सभी द्रव्यों के पञ्चभूतात्मक होने के कारण उनमें आकाशादि[4] महाभूतों के लघु आदि विशिष्ट गुण भी पाये जाते हैं। सुश्रुत ने इन गुणों की संख्या त्रीस[5] मानी है। ये गुण कुछ स्पर्श से, कुछ अनुभव से, शेष शरीर तथा मन पर प्रभाव पड़ने से पहचाने जा सकते हैं।

वीर्य—कुछ आचार्यों ने शीत एवं उष्ण गुण को [6]वीर्य संज्ञा दी है क्योंकि

१—औषधीर्नामरूपाभ्यां जानते ह्यजपावने।
अविपाश्चैव गोपाश्च ये चान्ये वनवासिनः॥

२—द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
पदार्थाः पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च॥ वाग्भट॥

३—रसाः स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणककषायकाः।
षड् द्रव्यमाश्रितास्ते च यथापूर्वं बलावहाः॥ वाग्भट॥

४—लघुगुरुस्तथा स्निग्धो रूक्षस्तीक्ष्ण इति क्रमात्।
नभोभूवारिवातानां वह्नेरेते गुणाः स्मृताः॥ भा० प्र० ५ प्र०॥

५—गुरुर्लघुः स्निग्धरूक्षौ तीक्ष्णः श्लक्ष्णः स्थिरः सरः।
पिच्छिलो विशदः शीत उष्णश्च मृदुकर्कशौ॥
स्थूलः सूक्ष्मो द्रवः शुष्क आशुर्मन्दः स्मृताः गुणाः॥ सुश्रुत॥

६—उष्णः शीतो गुणोत्कर्षाद् बुधैर्वीर्यं द्विधा स्मृतम्।
यत्सर्वमग्नीषोमीयं दृश्यते भुवनत्रयम्॥ वाग्भट॥

सम्पूर्ण संसार में प्राप्त होने वाले द्रव्य आग्नेय = अग्निगुणप्रधान तथा सौम्य= शीतगुण प्रधान देखे जाते हैं किन्तु दूसरे आचार्य मृदु, तीक्ष्ण, गुरु, लघु, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण एवं शीत गुण को वीर्य मानते हैं।

विपाक—मधुर आदि रसवाले द्रव्यों में जाठराग्नि के संयोग से जो परिवर्तन उत्पन्न होता है उसे विपाक[1]=पाक द्वारा उत्पन्न विशेषता कहते हैं। आचार्य वाग्भट ने सभी रसों का विपाक प्रायः तीन[2] प्रकार का माना है, १–मधुर, २–अम्ल एवं ३–कटु। यथा—मधुर तथा लवण रस का विपाक = मधुर, अम्ल-रस का विपाक अम्ल और कटु, तिक्त, कषाय रसों का विपाक प्रायः कटु होता हैं।

प्रभाव—रस, गुण, वीर्य तथा विपाक में समानता होते हुए भी किसी-किसी द्रव्य में कुछ विशिष्ट कर्म देखा जाता है, इसीको आचार्यों ने अचिन्त्य-शक्ति अथवा प्रभाव कहा है। यह प्रभाव तत्-तत् द्रव्यों के सेवन से ही नहीं अपितु देखने अथवा [3]स्पर्श मात्र से अपना कार्य कर देता है, यथा—सहदेई की जड़ को शिखा में बांधने से ज्वर का शान्त होना, यह सहदेई मूल का गुण नहीं अपितु प्रभाव है। सारांश यह है कि द्रव्यों में रहने वाले रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव अपना-अपना कार्य करने के साथ-साथ उत्तरोत्तर बलवान्[4] होते हैं, अतएव प्रभाव को अचिन्त्य[5] कहा है।

प्रतिनिधि तथा मारक द्रव्य—जिन द्रव्यों के रस[6], गुण, वीर्य, विपाकादि समान = अधिकांश समान हों उन्हीं को एकदूसरे का प्रतिनिधि कहा एवं माना

१—जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम्।
रसानां परिणामान्ते स विपाक इति स्मृतः॥

२—त्रिधा रसानां पाकःस्यात्स्वाद्वम्लकटुकात्मकः॥ वाग्भट॥

३—ज्वरं हन्ति शिरो बद्धा सहदेवी जटा यथा॥

४—रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान् व्यपोहति॥ चरक॥

५—अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः।
आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः॥ सु० सू० ४०॥

६—रसवीर्यविपाकाद्यैः समं द्रव्यं विचिन्त्य च।
युञ्ज्याद् विविधमन्यच्च द्रव्याणां तु रसादिवत्॥ भा० प्र०॥

जाता है। 'वैद्यावतंस' की इस टीका में यथासम्भव प्रतिनिधि=बदले में प्रयुक्त होने वाले तथा मारक=तत्-तत् पदार्थ जनित अथवा स्थित दोषों के शमनकर्ता द्रव्यों का उल्लेख किया गया है। प्रायः देखा गया है कि प्रतिनिधि द्रव्य पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व का निर्वाह नहीं कर पाते, केवल उनसे काम[1] चलाया जा सकता है। योग में वर्णित प्रधान[2] द्रव्य के प्रतिनिधि का प्रयोग कभी न करें, साधारणतया पूर्ण लाभ की दृष्टि से भी यथाशक्ति उसी द्रव्य की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये।

पुष्पकाल तथा फलपाककाल—शीत, उष्ण तथा समशीतोष्ण देशविभागानुसार मूलतः सम्पूर्ण जगत् को तीन भागों में विभक्त किया जाता है, तदनुसार किया हुआ ऋतु विभाजन ही वास्तविक ऋतु विभाजन है। वैसे तो ज्यौतिष तथा आयुर्वेद में ऋतुओं के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद[3] है, अतः वैद्यावतंस की टीका के सम्पूर्ण स्थानों में उल्लिखित कालनिर्देश को उपर्युक्त कालविभागानुसार समझने का प्रयत्न करें।

उपयोगी अंग—स्थावर[4] द्रव्यों में किस द्रव्य का कौन-सा अंश औषधो-

---

१—अभावे शालिचूर्णं वा शर्करा च गुडं तथा ॥ स० ना० कथा ॥

२—योगे यदप्रधानं स्यात्तस्य प्रतिनिधिर्मतः।
यत्तु प्रधानं तस्यापि सदृशं नैव गृह्यते ॥ भा० प्र० ॥

३—"तत्र माघादयो द्वादश मासाः, द्विमासिकमृतुं कृत्वा षड्ऋतवो भवन्ति; ते शिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्ताः" सु० सू० ६ ॥
यह मत सुश्रुत में ज्यौतिष शास्त्र का है, सुश्रुत का अपना मत निम्नलिखित है:—
"इह तु वर्षाशरद्धेमन्तवसन्तग्रीष्मप्रावृषः षड्ऋतवो भवन्ति, दोषोपचयप्रकोपोपशमननिमित्तं, ते तु भाद्रपदाद्येन द्विमासिकेन व्याख्याताः"। सु० सू० ६ ॥

४—तत्र स्थावरेभ्यस्त्वक्, पत्र, पुष्प, फल, मूल, कन्द, निर्यास, स्वरसादयः प्रयोजनवन्तः ॥ (सु० सू० अ० १)

पयोगी है, इसका उल्लेख सुश्रुत के मतानुसार इस वैद्यावतंस की टीका में तत्-तत् द्रव्यों के साथ यथास्थान कर दिया है और यही मत चरक को भी मान्य है, देखिये चरक सूत्र स्थान अध्याय १।

अन्य निघण्टुओं से वैशिष्ट्य—भगवती सप्तश्रृङ्गनिवासिनी देवी के वरदान द्वारा प्राप्त चतुरस्त्र प्रतिभा से इस कवि ने भारतीय संस्कृत साहित्य के विभिन्न अंगों को आत्मसात्कर उनको नया स्वरूप प्रदान किया। आयुर्वेद के प्रति अपनी रुचि प्रकट करते हुए पण्डितमल्लतल्लज लोलिम्बराज ने शास्त्र[1] का अनुसरण करते हुए "वैद्यावतंस नामक निघण्टु" का प्रसिद्ध[2] तथा दैनिक उपयोग में आनेवाले द्रव्यों के संग्रह द्वारा निर्माण किया। चिकित्सा के सभी पहलुओं से भली भांति परिचित होने के लिये यह अत्यावश्यक है कि वृहत्त्रयी[3]=चरक सुश्रुत वाग्भट का सम्यक् परिज्ञान हो, इसीलिये इस लघुनिघण्टु में चरकादि उक्त तीनों संहिताओं[4] का आश्रय लिया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि [5]आत्रेय संहिता सत्ययुग में, चरक संहिता त्रेतायुग में, सुश्रुतसंहिता द्वापरयुग में

१—वैद्येन पूर्वं ज्ञातव्या द्रव्यनाम गुणाऽगुणाः।
तदायत्तं हि भैषज्यं यज्ज्ञाने स्यात् क्रियाक्रमः॥

तथा

निघण्टुना विना वैद्यो विद्वान् व्याकरणं विना।
अनभ्यासेन धानुष्कस्त्रयो हास्यस्य भाजनम्॥

२—यत्प्रसिद्धमिह वर्तते फलं शाकमन्यदपि तन्निरूप्यते।
अप्रसिद्ध कथनं हि निष्फलं ग्रन्थविस्तरभयान्न लिख्यते॥ वै० वतंस ३॥

३—सुश्रुतो न श्रुतो येन वाग्भटो न च वाग्भटः।
नाधीतश्चरको येन स वैद्यो यमकिङ्करः॥

४—रचयति चरकादीन् वीक्ष्य वैद्यावतंसं।
कविकुलसुलतानो लाललोलिम्बराजः॥ २ वै० वतंस॥

५—अत्रिः कृतयुगे चैव त्रेतायां चरको मतः।
द्वापरे सुश्रुतः प्रोक्तः कलौ वाग्भटसंहिता॥

और कलियुग में वाग्भट संहिता की प्रधानता मानी जाती है या परम्परा से चली आयी है। सम्भवतः यही कारण रहा हो जिससे ग्रन्थकार ने अपने इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि इसमें अधिकांश मत वाग्भट[1] का ही है।

ग्रन्थकर्ता का परिचय

स्वान्तः सुखाय काव्य रचना व्यसनी प्राचीन कवियों की भांति कविवर लोलिम्बराज के काव्य तथा चिकित्सा ग्रन्थों में देशकालादि सूचक आत्मपरिचय कहीं उपलब्ध नहीं होता। वैद्यावतंस में करेला[2] शाक का वर्णन करते हुए जो कुछ इन्होंने लिखा है—उससे तथा मराठी में लिखित रत्नकाल चरित के द्वारा इनके दाक्षिणात्य होने का तथा हरि विलासकाव्य[3] के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य से इनके काल का कुछ आभास लगता है। वैद्यजीवन के एक[4] पद्य से कवि का शाक्त होना और सप्तश्रृङ्गस्थित देवी की उपासना करना सिद्ध होता है। पण्डित वेचन राम शर्मा ने संवादात्मक एक पद्य[5] को प्रमाण स्वरूप

१—वाग्भटस्य मतमस्ति समस्तं सुश्रुतस्य चरकस्य च किञ्चित्।
तद्वदत्रितनयस्य विचित्रा वाग्विलासरचना मम तावत् ॥ वै० वतंस ५५ ॥

२—जाम्बूनदीयां प्रतिमां यदीयां वक्षःस्थले वामदृशो वहन्ति।
अशेषशाकावलिमण्डनत्वं तत् कारवेल्लं न लभेत कस्मात् ॥ वै० वतंस।

३—श्री सूर्यसूनु हरिभूमिभुजोनियोगात् ॥ ह० वि० का० १ स० ॥

४—रत्नं वामदृशां दृशां सुखकरं श्रीसप्तश्रृङ्गास्पदं
स्पष्टाष्टादश बाहु तद्भगवतो भर्गस्य भाग्यं भजे।
यद्भक्तेन मया घटस्तनि घटीमध्ये समुत्पाद्यते
पद्यानां शतमङ्गनाधरसुधास्पर्धाभिधानोद्धुरम् ॥ वै० जी० ॥

५—भो लोलिम्ब कवे ! कुरुप्रणमनं किं स्थाणुवत्स्थीयते
कस्मै भोज नृपाल ! बालशशिने, नायं शशीवर्तते।
किं तद् व्योम्नि विभाति चास्तसमये चण्डद्युतेर्वाजिनः
पादत्राणमिदं जवाद् विगलितं खे राजतं राजते ॥ सुभाषित ॥

प्रस्तुत करते हुए इनको भोजराज का समकालिक माना है। एक मात्र इस पद्य से लोलिम्बराज को भोजराज का समकालिक मान लेना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि इनकी कृति अथवा इनके नाम आदि का उल्लेख तत्सम्बन्धित भोजप्रबन्ध आदि साहित्य में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। वैद्यावतंस में आये हुए सुल्तान[१] और पातशाह[२] शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके अविर्भाव के पूर्व दक्षिण में मुसलमानों का प्रवेश हो गया था। दक्षिण बीजापुर का मुसलमानी राज्य बहुत पुराना है। सम्भवतः दक्षिण में मुसलानी राज्य के स्थापित होने के बाद ही लोलिम्बराज का उदय हुआ हो। लोलिम्बराज ने अपने को राजा हरिहर का आश्रित होना स्वीकार किया है। मालूम होता है कि राजा हरिहर कोई माण्डलिक राजा रहे होंगे अन्यथा चोल, कर्णाटक, पाण्ड्य आदि दक्षिणदेशीय राजाओं की प्राप्त वंशावलियों में इनका नामोल्लेख अवश्य होता।

महाजनमण्डल नामक गुजराती पुस्तक के लेखक ने लोलिम्बराज का समय १६३४ ई० के आस पास माना है और यह भी लिखा है कि ये पूना जिला से १५-२० मील दूर स्थित जुन्नर ग्राम के निवासी थे। सुना जाता है कि लोलिम्बराज का विवाह किसी बादशाह की मुरासा[३] नामक कन्या से हुआ था,

---

१—हुतवह हुतजंघा जानुमांसप्रभावादधिगतगिरिजायाः स्तन्यपीयूषपानः।
रचयति चरकादीन् वीक्ष्य वैद्यावतंसं कविकुलसुल्तानो लाललोलिम्बराजः॥
वै० वतंस॥

२—समस्तपृथ्वीपतिपूजनीयो दिगंगनाश्लिष्टयशःशरीरः।
गुणिप्रियं ग्रन्थममुं व्यतानील्लोलिम्बराजः कविपातशाहः॥ वही॥

३—महीन्द्रमहिलात्रपाप्रदपदारविन्दे तथा,
पयोनिधिपयस्ततीजलधरैरुपात्ता तथा।
मम प्रकृतिनीरसान्नृपभिषग्भिरंगीकृता,
भविष्यति सरस्वती रसवती मुरासापतेः॥ वै० जी० ११॥

जिसका बाद में इन्होंने रत्नकला[१] नाम रक्खा। ये दोनों ही नाम वैद्य जीवन में प्राप्त हैं। मुरासा नाम केवल एक ही स्थान पर उपलब्ध होता है, अन्यत्र नहीं। रत्नकला के साथ विवाह होना इनके जीवन में रत्नकाञ्चन संयोग ही कहा जा सकता है।

इसकी टीका करते हुए मैंने चरक, सुश्रुत आदि प्रामाणिक संहिताओं के प्रमाणभूत उद्धरण, विविध भाषाओं में नाम, गुण, परिचय, पुष्पकाल, फलपाक काल, प्रतिनिधि द्रव्य, मारक द्रव्य, उपयोगी अंग तथा वक्तव्य को देकर इस लघुकाय निघण्टु के सुगूढ भावों को सरलतम किया है। वास्तव में विद्वान् लेखक ने इसको अत्यन्त उपयोगी पदार्थ समूहों के संकलन द्वारा प्रत्येक वैद्य का अवतंस=कर्णावतंस बनाया है। आशा है इसकी उपादेयता का अनुभव कर चिकित्सक समाज इसको अवश्य अपनायेगा।

सम्पादन आदि में सम्भाव्य त्रुटियों के लिये गुणैकपक्षपाती विद्वान् मुझे क्षमा करेंगे।

विदुषां विधेयः—

ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

१—आरोग्यलक्ष्मीरुपयाति पित्तज्वरातुरं रेणुकषायभाजनम्।
मां त्वं यथा रत्नकले स्मरार्तं कृतप्रकोपोपशमं सखीभिः ॥ वै० जी० २२ ॥

सहायक ग्रन्थों की सूची

(१) चरक
(२) सुश्रुत
(३) वाग्भट
(४) भावप्रकाशनिघण्टु
(५) धन्वन्तरि निघण्टु

भाषान्तरों में दिये गये नामों की सूची

संकेत	पूरा नाम
सं०—	संस्कृत
हिं०—	हिन्दी
कु०—	कुमाँउनी
बं०—	बंगला
म०—	मराठी
गु०—	गुजराती
क०—	कन्नड़
तै०—	तैलगु
ता०—	तामिल
फा०—	फारसी
अ०—	अरबी
इं०—	इंग्लिश
लै०—	लैटिन

———

विषयानुक्रमणिका

—:*:—

॥ श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥

वैद्यावतंसः

मङ्गलाचरणम्

अनुकृतमरकतवर्णा शोभितकर्णा कदम्बकुसुमेन ।
नखमुखमुखरितवीणा मध्येक्षीणा शिवा शिवं कुर्यात् ॥ १ ॥

टीकाकर्तुर्मङ्गलाचरणम्

यः सर्वंद्रव्यजातं कलयति सततं स्वीयपीयूषसेकैः
तं शुभ्रांशुं गणेशो वहति च मुकुटत्वेन देवेशवन्द्यः ।
स्यातामेतौ जनानामधिधरणि सदा श्रेयसे स्थेयसे द्वौ
टीका पूर्णा मदीया प्रभवतु भवतोराशिषा कामयेऽहम् ॥

टीका—मरकत मणि के सदृश कान्तियुक्त, कानों को कदम्ब पुष्प से अलंकृत की हुई, अंगुली की सहायता से वीणा वादन करती हुई, कृशोदरी भगवती कल्याण करे।

वक्तव्य—"अनुकृतमरकतवर्णा" पद के द्वारा कविवर वैद्य लोलिम्बराज ने अपनी आराध्या देवी सप्तश्रृंगी देवी का स्मरणात्मक मङ्गलाचरण किया है, जो ग्रन्थ की निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थ परम्परा प्राप्त है।

उक्त मङ्गलाचरण का दूसरा पद है—"नखमुखमुखरितवीणा" इसके द्वारा तदात्मिका अशेषविद्याधिष्ठात्री सरस्वती का ध्यान ग्रन्थकर्ता को अभीष्ट था, ऐसा प्रतीत होता है।

उक्त श्लोक में तीसरा पद है—"शिवा" कोशकार अमरसिंह ने शिवा शब्द के पर्यायों का उल्लेख करते हुये एक पर्याय 'सर्वमङ्गला' भी लिखा है, अतः

शिवा शब्द के द्वारा इनकी लोक कल्याण की मूल भावना भी स्पष्ट झलक रही है।

'शिवा'—इस शब्द का एक अर्थ हरीतकी भी है। ग्रन्थकार का उद्देश्य लघुनिघण्टु लिखने का था। "नानौषधिभूतं जगत्" के आधारपर संक्षेप करना बड़ा ही कठिन एवं विवादास्पद कार्य था। और द्रव्यों की किसी कारण उपेक्षा की भी जा सकती है किन्तु हरीतकी की उपेक्षा सवभांति अनुपेक्षणीय है एतदर्थ ग्रन्थकार ने हरीतकी के उस नाम (शिवा) का निर्वचन किया है जिस में इस के सभी गुणों का अन्तर्भाव किया जा सकता है या हो जाता है। भगवान् पुनर्वसु ने चरक संहिता अध्याय २५ में "हरीतकी पथ्यानाम्" कहकर इसे स्वास्थ्य वर्धक द्रव्यों में सर्वश्रेष्ठ माना है। अतएव चिकित्सकों ने इसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, यथा—

हरीतकी मनुष्याणां मातेव हितकारिणी।
कदाचित् कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी ॥ १ ॥

प्रस्तावना

हुतवहहुतजंघाजानुमांसप्रभावा-
दधिगतगिरिजायाः स्तन्यपीयूषपानः।
रचयति चरकादीन् वीक्ष्य वैद्यावतंसं
कविकुलसुलतानो लालोलिम्बराजः ॥ २ ॥

टीका—कवि-कुलश्रेष्ठ लोलिम्बराज ने गिरिजा देवी की आराधना के लिये अपने जंघा और जानु के मांस का अग्नि में हवन किया, इस कठोर तप से प्रसन्न हुई देवी ने कविवर को अपना स्तन पान कराया, तत्पश्चात् (देवी की कृपा से) इन्होंने चरक आदि प्रामाणिक संहिताओं के अनुसार वैद्यावतंस नामक लघु निघण्टु की रचना की।

वक्तव्य—नासिक के समीप सप्तश्रृङ्गपर्वत निवासिनी सप्तश्रृंगी देवी की इन्होंने उपासना की यह इनके जीवनवृत्त से ज्ञात होता है। अग्नि में जानु एवं

जंघा के मांस का हवन करना यह तपस्या की एक पद्धति रही है। मार्कण्डेयपुराण में समाधि वैश्य और सुरथ राजा की तपस्या प्रायः इसी प्रकार की थी।

ग्रन्थ की प्रामाणिकता—"रचयति चरकादीन् वीक्ष्य" इस वाक्य के द्वारा ग्रन्थकर्ता ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि यह ग्रन्थ केवल कपोल-कल्पना ही नहीं है, अपितु आर्षसंहिताओं से अनुप्राणित भी है।

जीवन वृत्त—संक्षेप में कविवर ने इस पद्य के द्वारा अपना, अपने इस लघुकाय ग्रन्थ का तथा सुलतान शब्द के माध्यम से अपने काल का परिचय भी एक साथ उपस्थित किया है॥ २॥

उद्देश्यः

यत्प्रसिद्धमिह वर्तते फलं शाकमन्यदपि तन्निरूप्यते।
अप्रसिद्धकथनं हि निष्फलं ग्रन्थविस्तरभयाद्म लिख्यते॥३॥

टीका—मैं इस निघण्टु में लोकप्रसिद्ध फल, शाक, धान्य आदि का ही वर्णन कर रहा हूँ, क्योंकि अप्रसिद्ध पदार्थों का वर्णन ही व्यर्थ है अतः ग्रन्थ के विस्तारभय से उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

वक्तव्य—यह निघण्टु चिकित्सकों के उपयोग के अतिरिक्त जनसाधरण का भी महान् उपकारक है। इसमें दैनिक व्यवहारोपयोगी फल, शाक, धान्य, मांस, दुग्ध आदि का वर्णन उत्तम प्रकार से किया गया है। यथावसर अपनी काव्य छटा दिखलाने में भी वैद्य लोलिम्बराज चूके नहीं हैं॥ ३॥

अथ फलवर्गः

द्राक्षा (मुनक्का)

द्राक्षासाक्षात्सुधा तावन्मधुरा रसपाकयोः।
सृष्टमूत्रशकृद्गुर्वी स्निग्धा शुक्रहरी हिमा॥ ४॥

तुवराक्षि हिता मदात्ययानिलमायुक्षतजक्षयक्षयान् ।
श्वसनं कसनं ज्वरं तृपं स्वरभेदं मुखतिक्ततां हरेत् ॥ ५ ॥

यथाह सुश्रुतः—

तेषां द्राक्षा सरा स्वर्या मधुरास्निग्ध शीतला ।
रक्तपित्त-ज्वर-श्वास-तृष्णा-दाह-क्षयापहा ॥ सु० सू० ४६ ॥

यथाह चरकः—

तृष्णादाहज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान् ।
वातपित्तमुदावर्तं स्वरभेदं मदात्ययम् ॥
तिक्तास्यतामास्यशोषं कासं चाशु व्यपोहति ।
मृद्वीका बृंहणी वृष्या मधुरा स्निग्धशीतला ॥ च. सू. २७ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-द्राक्षा, स्वादुफला, मधुरसा, मृद्वीका, हार हूरा, गोस्तनी । हिं०-दाख, मुनक्का । बं०-मनेका, आंगूर । म०-काले द्राक्षें । गु०-द्राक्ष । क०-वेडगण द्राक्षे । तै०-द्राक्षा । ता०-कोडिमद्रि फा०-अंगूर, मुनक्का, अ०-एनबजवीब, ह्बुस जबीब। इं०-ग्रेप रेजिन Grape Raisins. लै०-वाइटिन्स विनिफेरा Witins venipera।

गुण—मुनक्का साक्षात् अमृत है । यह रस तथा पाक में मधुर, मूत्र निकालने वाला, भारी, स्निग्ध, वीर्य को बढ़ाने वाला, शीतल, कसैला, नेत्रों हितकारी, मदात्यय, वात, पित्त, रक्तक्षय, क्षयरोग, श्वास, कास, ज्वर, तृष स्वरभंग और मुख का कडुआपन दूर करता है ।

परिचय—मुनक्का आकृति भेद से दो प्रकार का होता है १—काला २— लाल । इसी की एक दूसरी जाति है जिसे किसमिस कहते हैं । विशेपतः इसक उत्पत्ति काबुल, कन्धहार (गान्धार) देश में होती है । अब तो इसकी लता भारत में भी मिलती हैं । यह लता-वर्गीय क्षुप है । इसके पत्ते हाथ की आकृ के होते हैं । लम्बे-काले अंगूरों के मुनक्के, छोटे-गोल अंगूरों के किसमिस बना जाते हैं । कषाय होने के कारण इसके पत्र अतिसार में दिये जाते हैं ।

पुष्पकाल—आषाढ़, श्रावण
फलपाक काल—वैशाख, ज्येष्ठ
उपयोगी अंग—फल, पत्र
प्रतिनिधि—किसमिस
मारक—उन्नाव

वक्तव्य—जाति भेद से अंगूर दो प्रकारके होते हैं। १—बीज रहित लघु आकार के। २—बीज सहित लम्बे गोस्तनाकार। प्रथम प्रकार के अंगूरोंसे किसमिस बनाये जाते हैं और दूसरे प्रकार के अंगूरोंसे मुनक्का बनाये जाते हैं॥ ४-५ ॥

आम्रम् (आम)

भवति पवनपित्तास्रकरं बालमाम्रं,
जनयति कफपित्तेऽप्यस्थिबंधोपपन्नम्।
अथ गुरु मधुराम्लं श्लेष्मशुक्रप्रभाकृत्,
परिणतमनिलघ्नं तुष्टये पुष्टये स्यात्॥ ६ ॥

यथाह चरकः—

रक्तपित्तकरं बालमापूर्णं पित्तवर्धनम्।
पक्वमाम्रं जयेद्वायुं मांसशुक्रबलप्रदम्॥ च. सू. २७॥

यथाह सुश्रुतः—

पित्तानिलकरं बालं पित्तलं बद्धकेशरम्।
हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम्॥
कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरु।
पित्ताविरोधि संपक्वमाम्रं शुक्रविवर्धनम्॥ सु. सू. ४६॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—आम्र, चूत, रसाल, सहकार, अतिसौरभ, कामाङ्ग, मधुदूत, माकन्द, पिकवल्लभ। हिं०—आम। बं०—आम। म०—आंबा। गु०—आम्बो। क०—माविनफल। तै०—मामिडि। फा०—आम्बा।

अ०-अम्बज। इं०-मेंगो Mango लै०-मेंगी फेरा इण्डिक Maugfera Indica।

गुण—नवीन आम (आम का टिकोरा) वात, पित्त एवं रक्त को प्रकुपि करता है। इसी में जब गुठली पड़ जाती है तब यह कफ तथा पित्त को प्रकुपि करता है। पकने पर यह गुरु, मधुर, अम्ल, होता है और कफ, शुक्र, प्रभा बढ़ाता हुआ वात का शमन कर चित्त को प्रसन्न तथा शरीर को पुष्ट करता है

परिचय—साहित्यिकों की लेखनी, रसिकों की जीभ, कोयलों की आं आम्र=रसाल से सुपरिचित हैं। अपनी सुषमा के कारण वृक्षों में, स्वाद के कार फलों में यह सर्व श्रेष्ठ है, अधिक क्या कहा जाय यह वसन्त ऋतु का राजा है इसके वृक्ष मरुभूमि में कम होते हैं। आकार-प्रकार भेद से इसकी अनेक जाति मानी गई हैं। इसके पेड़ ऊँचे, पत्ते लम्बे होते हैं। इसके फूलों को मञ्जरी= मोर या वल्लरी=बौर कहते हैं। इनका रंग श्वेताभपीत होता है।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु
फलपाककाल—वर्षाऋतु
मारक द्रव्य—सिकञ्जवीन, जामुन और दूध।
उपयोगी अंग—फूल, फल, गुठली, छाल, पत्र।

वक्तव्य—फलवर्ग में आम की श्रेष्ठता प्रसिद्ध है। यह बौर लगने के दि से लेकर पकने तक संसार की आंखों को अपनी ओर आकर्षित किये रहता है इसी लिये मानव भी इस की सभी अवस्थाओं से लाभ उठाता है। आम वे टिकोरे की—चटनी बनती है, कुछ बड़ा होने पर इसका—अमचूर, अचार मुरब्बा बना कर रख लिया जाता है, जब यह पकने लगता है तब तो राजा-रं सबके घरों में इसका समान आदर होने लगता है, इसके स्वाद से लुब्ध होक मानव इसके रस को निकाल कर भविष्य के लिये सुखाकर रख लेते हैं, जिसे आम्रावर्त्त या अमावट कहते हैं। आजकल तो प्रत्येक फलों का रस वैज्ञानि विधि से डिब्बों में बन्द किया हुआ बाजारों में मिलता है। इसकी कुछ अन्य जातियां भी हैं, यथा—आम्रातक, राजाम्र, कोशाम्र ॥ ६ ॥

पक्वाम्ररसगुणाः

हृद्यः स्निग्धो रोचनः सौरभाढ्यो
वैद्यैरित्थं तद्रसः स्तूयमानः ।
खण्डैः खण्डैरन्वितं मण्डकानां
सार्द्धं भोक्तुं पञ्चवक्त्रः शिवोऽभूत् ॥ ७ ॥

यथाह भावमिश्रः—

तद्रसो गालितो वल्यो गुरुर्वातहरः सरः ।
रोचनस्तर्पणोऽतीव बृंहणः कफवर्द्धनः ॥ भा. प्र. फलवर्गः ॥

गुण—पका हुआ आम का रस हृदय के लिये लाभप्रद, स्निग्ध, रुचिवर्धक, सुगन्धिपूर्ण होता है, इस सम्बन्ध में ग्रन्थकर्ता का कथन है—मंडक=मठी के टुकड़ों को आम के सुमधुर रस के साथ सेवन करने के लिये ही शिवजी पञ्चमुख वाले हुए । अर्थात् यह आम मानवों को ही प्रिय नहीं अपितु देवताओं को भी प्रिय है ॥ ७ ॥

दाडिमम् (अनार)

त्रीन् दोपान्सातिपित्तान् शमयति मधुरं दाडिमं चाम्लमुष्णम् ।
किञ्चित् पित्ताऽविरोधि द्यति कफपवनौ चोभयं ग्राहि हृद्यम् ॥

यथाह चरकः—

अम्लं कषायमधुरं वातघ्नं ग्राहि दीपनम् ।
स्निग्धोष्णं दाडिमं हृद्यं कफपित्ताविरोधि च ॥
रूक्षाम्लं दाडिमं यत्तु तत् पित्तानिलकोपनम् ।
मधुरं पित्तनुत्तेषां तद्धि दाडिममुत्तमम् ॥ च० सू० २७

यथाह सुश्रुतः—

कषायानुरसं तेषां दाडिमं नातिपित्तलम्।
दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्चोविबन्धनम्॥
द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुरं चाम्लमेव च।
त्रिदोषघ्नन्तु मधुरमम्लं वातकफापहम्॥

भाषान्तरों में नाम--सं०-दाडिम, करक, दन्तवीज, लोहितपुष्पक। हिं०-दाडिम, अनार। बं० दाड़िम, म०-डालिंव, गु०-दालिम, क०-दालिंवा, तै०-डानिम्म चेट्टु, दालिम्बकाया, ता०-मादई चेट्टेड्डी, फा०-अनार तुरस, अ०-रुमान हामिज, इं०-पोमेग्रेनेट Pomegranate लै०-प्युनिका ग्रानेटम—Punica granatum.।

गुण—मीठा अनार पित्ताधिक त्रिदोष को नष्ट करता है। खट्टा अनार कुछ गरम, पित्त को न बढ़ाने वाला, वात-कफ का विनाशक, मल को रोकने वाला और हृद्य (रुचिकर) होता है।

परिचय—अनार के पेड़ प्रायः सभी बगीचों में पाये जाते हैं। पहाड़ी प्रदेशों में इसकी अधिक उत्पत्ति होती है। इसके फूल लाल रंग के होते हैं। फल गोल, छिलका लाल या भूरा होता है। इसको फोड़ने पर भीतर से नियमित रूप से सजे हुए बीज पंक्ति दन्तपंक्ति के सदृश दिखाई देती है। इनका रंग लाल अथवा सफेद होता है। स्वाद खट्टा अथवा मीठा होता है। अल्मोड़ा, नैनीताल, गढ़वाल में आकार में छोटे स्वाद में खट्टे को दाड़िम और आकार में बड़े और स्वाद में मीठे को अनार कहते हैं।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु। प्रतिनिधि—सूखा सिंघाड़ा।
फलपाककाल—शरद् ऋतु। मारक—कतीरा।
मारक—खट्टा अनार (मीठे अनार के उपद्रवों का शामक)।
उपयोगी अंग—छाल, कोमल पत्ते, फूल, फल का छिलका, बीज।

वक्तव्य—अनार का फूल तथा फल का छिलका ग्राही होता है, इनसे भी अधिक ग्राही होता है इसके जड़ का छिलका, अतः इसका अतिसार में प्रयोग

किया जाता है। पेट में होने वाले लम्बे कीड़ों (Tape worm) को मारने की इसमें अपूर्व शक्ति है। इसका क्वाथ बनाकर पीने से उलटी (कै) होने की आशंका बनी रहती है किन्तु उलटी होती नहीं और कीड़ियां मरकर मल के साथ बाहर निकल आती हैं।

बदरम् (बेर)

स्निग्धं लघ्वग्निवृद्धिं रुचिमपि जनयेत् स्वादु कोलाफलं तु।
स्निग्धं वातं च पित्तं क्षपयति च कफं मेदुरं चक्रीरीति ॥ ८ ॥

यथाह चरकः—

पित्तश्लेष्मप्रकोपीणि कर्कन्धु.....। च० सू० २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

कर्कन्धु कोल बदरमामं पित्तकफावहम्।
पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम्।

भाषान्तरों में नाम—सं०-कर्कन्धु, बदरी, कोल, अजप्रिया, कुहा, कोली, विषमा, उभयकण्टका। हिं०-छोटा बेर। बं०-कुलफल। म०-बोर, रामबोर। गु०-बोरड़ी, क०-येरनु। तै०=रेगचेट्टु,। ता०-रेयन्ति। फा०-कुनार। अ०-सीदर नबंक। इं०-जुजब। लै०-जिजिफसजुजुबा Zizyphus Jajuba.

गुण—बेर का फल स्निग्ध, हल्का, जठराग्नि को बढ़ानेवाला, रुचिकारक तथा स्वादु होता है। यह स्निग्ध होने के कारण वात-पित्त का शमन करता है और कफ तथा मेदा को बढ़ाता है।

परिचय—बेर के पेड़ भारत के उष्ण प्रदेशों में सर्वत्र दिखाई देते हैं। पत्ते गोलाई लिये कुछ लम्बे होते हैं। पत्तों का पृष्ठभाग भूरा-सफेद होता है। यह कण्टकी वृक्ष है। इसके फल पकनेपर पीले और बाद में बादामी रंग के हो जाते हैं।

पुष्पकाल—शरद् ऋतु । प्रतिनिधि—वेर ।

फलपाककाल—वसन्त ऋतु । मारक—गुलकन्द, शिकंजवीन ।

उपयोगी अंग—जड़, छाल, पत्र, फल ।

वक्तव्य—आकृति भेद से यह तीन प्रकार का होता है। १—वड़ा वेर परवल के समानाकार। २—छोटा वेर आचार डालनेवाली नारंगी के समान। ३—झड़ वेर इसका पेड़ झाड़ी के आकार का होता है। ऊपर लिखित दोनों वेरों से इसका आकार भी लघुतम होता है। ऊपर जो भी वर्णन किया गया है, वह नं० २ और नं० ३ का है। जिसको हमने वड़ा वेर लिखा है, वह उक्त दोनों से गुणों में भी वड़ा है। सौवीर, फेनिल, कुवल, घोंटा ये वड़े वेर के संस्कृत नाम हैं। वड़ा वेर शीतल, विरेचक, भारी, शुक्रवर्धक तथा बृंहण होता है। इसके सेवन से पित्त, दाह, रक्तक्षय तथा प्यास का शमन होता है। सूखे वेर का चूरा बनाकर रखा तथा वेचा जाता है और इसकी चटनी स्वादिष्ट बनती है।

वेर के पेड़की छाल के क्वाथ से घाव धोने से शीघ्र रोपण होता है। वेरका गोंद अभिष्यन्द की वेदना का शमन करता है। कड़वी दवा पीने के पूर्व बेर की पत्ती चबा लेने से दवा के स्वाद का अनुभव नहीं होता ॥ ८ ॥

नारङ्गम् (नारंगी)

भक्ताभिलापजनकं पवनापहारि-
विभ्रद्रसं मधुरमम्लरसं च किञ्चित् ।
आलिङ्गितं गुरुतया परिपाकलक्ष्म्या
नारिङ्गजं फलमुदेति मुदेति रम्यम् ॥ ९ ॥

यथाह चरकः—

मधुरं किञ्चिदम्लं च हृद्यं भक्तप्ररोचनम् ।
दुर्जरं वातशमनं नागरङ्गफलं गुरु ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तरोचनम्।
वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारङ्गस्य फलं गुरु ॥ सु० सू० ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-नारङ्ग, नागरङ्ग, त्वक्सुगन्ध, मुखप्रिय। हिं०-नारङ्गी। बं०-कमला। म०-नारिंग, सन्त्रा। गु०-सन्तरा। क०-माधवला। तै०-दयाकाया। ता०-किचिलि। अ०-नारंज। इं०-ओरेंज Orang। लै०-साइट्रस् ओरेन्शियम् Citrus aurantium।

गुण—नारंगी का अधपका फल रुचिकारक, वातनाशक, मधुर किञ्चित् अम्लरस वाला होता है। भलीभांति पका हुआ नारंगी का फल हृदय तथा दृष्टि को प्रसन्न करता है।

परिचय—नारंगी निम्बू जाति का वृक्ष है। इसके पेड़ तथा पत्ते सब प्रकार नीबू के सदृश होते हैं। इसके वृक्ष भारत वर्ष में प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु

फलपाक काल—हेमन्त ऋतु

मारक—नमक, मिश्री, नीवू का अचार। प्रतिनिधि—सन्तरा।

उपयोगी अंग—फल केशर, फल का छिलका, पत्र, छाल।

वक्तव्य—नीवू की जातियों में-बीजपूर = बिजौरा, चकोतरा, छोटा जम्बीर और बड़ा जम्बीर पञ्जाब और कुमाऊं में इसको गलगल कहते हैं। कागजी नीबू जिसे केवल नीबू भी कहते हैं, मीठा नीबू शर्बती या मोसब्बी और नारंगी, इतने भेद निघण्टुकारों ने उद्धृत किये हैं, किन्तु नैनीताल, अल्मोड़ा, गढ़वाल में एक नीवू और देखा जाता है जो करीब बिजौरा के समानाकार किन्तु उससे गुणस्वाद में सर्वथा पृथक् होता है, यदि बिजौरा = बीजपूर है तो यह नीबू रसपूर है।

यूनानी मत के अनुसार जहाँ नारंगी के वृक्ष होते हैं वहाँ भूत-प्रत बाधा नहीं होती। नाड़ी व्रण पर नारंगी का गूदा गरम कर बांधने से घाव भर जाता है। इसके छिलके कपड़ों में रखने से कीड़ा नहीं लगता। चीनी लोग घर को सुगन्धित करने के लिये इसको छील कर कमरों में रख देते हैं।

राजादनम् (खिरनी)

स्निग्धं कषायमधुरं गुरुभाग्यवन्तो।
राजादनस्य परिपक्वफलं लभन्ते॥

यथाह चरकः—

............................राजादनफलानि च।
स्वादूनि सकषायाणि स्निग्धशीतगुरूणि च॥ च. सु. २७॥

भाषान्तरों में नाम—सं०–राजादन, फलाध्यक्ष, राजन्या, क्षीरिका। हिं०–खिन्नी, खिरनी। बं०–क्षीरिणी, रजणी। म०–रायण। क० खेनेमारित्वे। ता०–पल्ल। इं०–औवटयूजलीव्ड मीमुसाप्स Obtuse Leaved Mimusops. लै०–मीमुसाप्स हैग्जेन्ड्रा Mimusops Hexendra.।

गुण—पका हुआ खिरनी का फल स्निग्ध, कषैला, मधुर, भारी होता है। यह फल भाग्यवानों को सुलभ होता है।

परिचय—खिरनी का छायादार वृक्ष होता है। काण्ड मटमैले रंग का होता है। काटने पर भीतर की छाल लालवर्ण की होती है तथा इसमें से दूध निकलता है। पत्ते लम्बे चौड़े होते हैं। प्रत्येक शाखा में एक फूल लगता है। फल बेर की भांति लगे रहते हैं, इनका रंग पहिले हरा पकने पर पीला हो जाता है, काटने पर कच्चे फलों से भी दूध निकलता है। राजादन नाम से यह प्रतीत होता है कि यह फल किसी समय राजाओं को उपहार में दिया जाता होगा। इसके फलों से तेल निकलता है, यह तेल मादक होता है।

पुष्पकाल—हेमन्त का प्रारम्भ। प्रतिनिधि—च्यूरा।
फलपाक काल—ग्रीष्म का प्रारम्भ। मारक—गुलकन्द
उपयोगी अंग—पत्र, फल, छाल।

वक्तव्य—इसकी छाल कषैली होती है अतः वैद्य वर लोलिम्बराजने इसका वर्णन मौलसिरी के साथ किया है। नैनीताल जिला के उष्ण भागों में ठीक इन्हीं लक्षणों का एक फलवान् वृक्ष होता है, इसके पत्ते १०–१२ इञ्च लम्बे ५–६ इञ्च

चौड़े होते हैं, फल देखने में खिरनी जैसा किन्तु उससे चौगुना बड़ा करीब परवल के आकार का, इसकी गुठली लम्बी बादामी रंग की होती है। फल खाने के बाद इन गुठलियों से तेल निकाला जाता है, जिसका खाने आदि में व्यवहार होता है। खिरनी के समस्त गुण इसमें है। पाठक इस ओर ध्यान दें ॥ ६ ॥

बकुलः (मौलसिरी)

स्निग्धं कषायमधुरं द्विजदार्ढ्यकारि।
विष्टम्भि दन्तविशदं बकुलोद्भवंस्यात् ॥ १० ॥

यथाह सुश्रुतः—

सुगन्धि विशदं हृद्यं बाकुलं .... । सु. सू. ४६ ।

यथाह भावमिश्रः—

बकुलस्तुवरोऽनुष्णः कटुपाकरसो गुरुः।
कफपित्तविषश्वित्रक्रिमिदन्तगदापहः ॥ भा. प्र. पुष्पवर्गः ॥

भाषान्तरों में नाम—सं० बकुल, मधुगन्ध, सिंहकेसरक। हिं०—मौलसिरी। बं०—बकुलगाछ। म०—बकुली, गु०—बोलसिरी। क०—बकुल। तै०—पामड़ा। ता०—मोगलमरम। इं०—सुरीनम मेडलर—Surinum Medlar. लै०—माइमुसोप्स इलेंजी Mimusops Elingi.।

गुण—मौलसिरी की छाल–स्निग्ध, कषैली, मधुर, दांतों को दृढ़ तथा शुद्ध करने वाली और विष्टम्भी होती है।

परिचय—मौलसिरी के पेड़ बगीचों में लगाये रहते हैं। इसके फूल अत्यन्त सुगन्धित होते हैं। इनको सुखाकर कपड़ों में रखते हैं, इनसे कीड़ा नहीं लगता। इसकी छाल मटमैली पत्ते जामुन के आकार के करीब एक इञ्च लम्बे होते हैं। फूल सफेदी युक्त, हल्के, पीले छोटे आकार के होते हैं।

पुष्पकाल—वर्षा ऋतु से प्रारम्भ। प्रतिनिधि—बबूल की फली।
उपयोगी अंग—छाल, पत्र, पुष्प। मारक—घी ॥ १० ॥

कर्मरङ्गम् (कमरख)

सन्तर्पणं स्वादु कषायमम्लं
भव्यं भवेद्वक्त्रविशोधनाय ॥

यथाह चरकः—

मधुराम्लकषायं च विष्टम्भि गुरुशीतलम् ।
पित्तश्लेष्मकरं भव्यं ग्राहि वक्त्र विशोधनम् ॥ च. सू. अ. २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

हृद्यं स्वादु कषायाम्लं भव्यमास्यविशोधनम् ।
पित्तश्लेष्महरं ग्राहि गुरुविष्टम्भि शीतलम् ॥ सु. सू. अ. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कर्मरङ्ग, भव्य, शिराल, कारुक, शुकप्रिय । हिं०-कमरख । बं०-कामराङ्गा । म०-कर्मर । गु०-कर्मरंग । इं०-कैरम्बोला Carambola. लै०-एवरहोवा कैरेम्वोला Averrhoa carmbola. ।

गुण—कमरख का फल, तृप्तिकारक, स्वादु, कषैला, खट्टा, तथा मुखशोधक है ।

परिचय—इसके वृक्ष मध्यम श्रेणी के होते हैं । इसके पत्ते गुलाब के पत्तों जैसे फूल लालरंग के, फल गुच्छेदार होते हैं । फलों के ऊपर तीन, चार धारियां होती हैं । इसके भीतर के बीज चपटे, लम्बे तथा सफेद-पीले होते हैं ।

पुष्पकाल—वर्षा ऋतु । मारक—लवण ।
फलपाककाल—शिशिर ऋतु ।
उपयोगी अंग—फल, पत्र ।

लकुचम् (बड़हर)

अभव्यमाहुर्लकुचं फलानां
त्रिदोषकृच्छुक्रविनाशनं च ॥ ११ ॥

यथाह सुश्रुतः—

त्रिदोषविष्टम्भकरं लकुचं शुक्रनाशनम् ॥ सु. सू. अ. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—लकुच, क्षुद्रपनस, लिकुच,। हिं०—वड़हर (ल)। वं०—डेयो मादार। म०—वटारफल। गु०—क्षुद्रफणस। लै०—आर्टोकार्पस लकुचा—Artocarpus Lacoocha.।

गुण—दोष पूर्ण होने के कारण वड़हर को सब फलों में नीच माना है। यह त्रिदोष कारक एवं शुक्र नाशक होता है।

परिचय—वड़हर के पेड़ पर्याप्त ऊंचे तथा शाखा-प्रशाखावान् होते हैं। पत्ते चौड़े वरगद के आकार के फूल गोल तथा पीले होते हैं। फल कैथ के बराबर गांठदार वेडौल, पकने पर पीले वर्ण के होते हैं। इसमें सफेद रंग की अनेक गुठलियां निकलती है। खाने में यह वैसा ही परेशान करता है। जैसे कटहर।

पुष्पकाल—वसन्त तथा वर्षा ऋतु। मारक—शिकञ्जवीन।

फलपाककाल—हेमन्त ऋतु।

उपयोगी अंग—फल, बीज, दूध।

वक्तव्य—वड़हर में वर्ष में दो बार फूल आता है, दो ही बार फल भी लगते हैं। इसके पेड़ के किसी अंग को काटने पर वहाँ से दूध निकलता है, यह दूध घाव का रोपण करता है। फल के बीजों को पीसकर शिर पर लगाने से जूं मरजाती हैं ॥ ११ ॥

निम्बूः (नीबू)

अशीतमम्लमग्निकृत् समस्तगुल्मशूलनुत्।
अरोचकं विसूचिकां कृमींश्च निम्बु नाशयेत् ॥ १२ ॥

यथाह भावमिश्रः—

निम्बुकं क्रिमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमम्लमुदरग्रहापहम्।
वातपित्तकफशूलिने हितं कष्टनष्टरुचिरोचनं परम् ॥

त्रिदोषवह्निक्षयवातरोगनिपीडितानां विषविह्वलानां।
मन्दानले बद्धगुदे प्रदेयं विसूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥भा. प्र. फ. वर्ग॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-निम्बू, निम्बुकं, निम्बूकं। हिं०-कागजी निम्बू, नीबू। बं०-कागजी लेबु। म०-लिंबु। गु०-लींबु। तै०-निम्ब पण्डु। फा०-लीमूनेतुर्श। इं०-लेमन Lemon. लै०-लेमोन एसिडम Lemonum Acidum.।

गुण—नींबू, गरम, खट्टा, अग्निवर्धक, सभी प्रकार के गुल्म तथा शूलों का नाशक, रुचिकारक, विसूचिका (हैजा) तथा क्रिमि नाशक होता है।

परिचय—नीबू से भारतीय जनता चिरात् परिचित है। यह प्रायः सर्वत्र सुलभ फल है, इसके पेड़ छोटे आकार के होते हैं। यह एक कांटे दार वृक्ष है। आकार भेद से यह दो प्रकार का होता है। १-गोल। २=लम्बा। प्रायः देखा गया है इसमें वर्ष में अनेक बार फूल और फल लगते हैं। इसके फल की छाल कागज के समान पतली होती है। अत एव इसका नाम कागजी नीबू है।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु।

फलपाककाल—शिशिरऋतु।

उपयोगी अङ्ग—छाल तथा फल का केशर।

वक्तव्य—चरक, सुश्रुत में नीबू का शब्दतः उल्लेख नहीं मिलता किन्तु इसके एक प्रधान गुण 'दन्तशठत्व' पर जब ध्यान जाता है तो इसका नाम 'एरावत' हो ऐसा अनुमान लगता है। इसकी अम्लता की विशेषता है कि औरों के दांतों का क्या कहना इससे हाथी के भी दांत खट्टे हो जाते हैं। देखिये सुश्रुत सूत्र अ० ४६—"ऐरावतं दन्तशठमम्लं शोणितपित्तकृत्"। नीबू की छाल अग्निवर्धक एवं कोष्टगत वात शामक है।

अम्लिका (इमली)

कोलाम्बिका फलं शुष्कं भ्रमक्लमहरं लघु।
कफवातहरं तृष्णाच्छेदि भेदि प्रदीपनम् ॥ १३ ॥

यथाह चरकः—

अम्लिकायाः फलं पक्वं तस्मादल्पान्तरं गुणैः। च. सू. २७।

यथाह सुश्रुतः—

वातापहं तिन्तिडीकमामं पित्तबलासकृत्।
ग्राह्युष्णं दीपनं रुच्यं संपक्वं कफवातनुत्॥ सु. सू. अ. ४६।

यथाह भावमिश्रः—

अम्लिकायाः फलं त्वाममत्यम्लं लघुपित्तकृत्।
पक्वन्तु मधुराम्लं स्याद्भेदि विष्टम्भवातजित्॥
चिञ्चापत्रं तु शोथघ्नं रक्तदोषव्यथापहम्।
तस्य शुष्कत्वचाक्षारः शूलमन्दाग्निनाशनः॥ भा० प्र०॥

भाषान्तरों में नामः—सं०—अम्लिका, चुक्रिका, अम्ली, चुक्रा, दन्तशठा, अम्ला, चिंचिका, चिञ्चा, तिन्तिडीका, तिन्तिडी। हि०—इमली। बं०—तेतुंल। म०—चिंच। गु०—आंवली। क०—हुणिसे। तै०—चिञ्चाटेट्टु। ता०—पुलि। अ०—तमरहिन्दी। इं०—टेमेरिंडट्री Tamarind Tree. लै०—टेमेरिंडस इंडिकस Tamrindus Indicus. उडिया—कआं।

गुण—इमली का सूखा फल भ्रम, सुस्ती का विनाशक, लघु, कफ, वात, तृष्णा नाशक तथा विरेचक और अग्नि दीपक होता है।

परिचय—इमली के वृक्ष भारतवर्ष में सर्वत्र पाये जाते हैं। इसके पेड़ पर्याप्त ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते आंवले के पत्तों जैसे ही होते हैं, फल सेम के आकार के होते हैं। इसके बीजों को चियाँ कहते हैं, इनको बच्चे खेलने के लिये, भक्त लोग माला फेरने के लिये वैद्य उदरशूल आदि के शमन के लिये रख लेते हैं। अवस्था के भेद से इसके गुणों में स्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है।

इमली का कच्चा फल—अधिक खट्टा, लघु तथा पित्तकारक होता है। पका फल—मधुर खट्टा, विरेचक, एवं वात नाशक होता है। इमली के पत्ते, शोथ,

२

रक्तविकार एवं पीड़ा शामक होते हैं। इसकी त्वचा का क्षार शूल तथा मन्दाग्नि को दूर करता है। इमली के फूल की पुल्टिस आंख के शोथ का शमन करती है तथा फूल का रस बवासीर की वेदना को शान्त करता है। इमली के वृक्ष के नीचे आराम करने की दृष्टि से नहीं बैठना चाहिये, इससे पित्त विकार बढ़ जाते हैं। मद्रास के निवासी इमली के बीजों को घी में भूनकर खाया भी करते हैं। इमली धतूरे के विष को समाप्त कर देती है।

पुष्पकाल—वसन्तऋतु। प्रतिनिधि—आलूबुखारा।
फलपाककाल—ग्रीष्म ऋतु। मारक—सूखे बेर, बनप्सा।
उपयोगी अङ्ग—छाल, पत्र, पुष्प, फल, गुठली ॥१३॥

आमलकम् (आंवला)

उष्णेतरं शुक्रकरं समेतं रसैरशेषैर्लवणं विनैकम्।
दोषांश्च हत्वा ह्यधिकं फलेषु धात्रीफलं दृष्टिबलङ्करोति ॥१४॥

यथाह चरकः—

विद्यादामलके सर्वान् रसांल्लवणवर्जितान्। च० सू० अ० २७।

यथाह सुश्रुतः—

अम्लं समधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम्।
चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम्॥
हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः।
कफं रूक्षकषायत्वात् फलेभ्योऽभ्यधिकञ्च तत्॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-वयस्या, आमलकी, वृष्या, जातीफलरसा, शिवा, धात्रीफला, श्रीफला, अमृतफला, तिष्यफला, अमृता, हिं०-आँवला, आंवरा, आमला। बं०-आमला। म०-कास्वड्डा। गु०-आंवलो। क०-नेल्लि। तै०-उसरकाम। फा०-आमलज, आमल। इं०-एम्बलिक माइरोबैलन Embelic myrobalan. लै०-फाइलैन्थस एम्बलिका Phyllanthus Embelica.

गुण—आंवला शीतल, वीर्यवर्द्धक, लवण के अतिरिक्त पांचों रसोंवाला, त्रिदोष नाशक है अतएव यह सभी फलों में श्रेष्ठ और चक्षुष्य है। यह खट्टा होने के कारण वात का, मधुर एवं शीतल होने के कारण पित्त का, रूक्ष और कषाय होने के कारण कफ का शमन करता है।

परिचय—आंवले के वृक्ष पर्याप्त बड़े होते हैं। इसकी पत्तियाँ इमली के पत्तों के सदृश होती हैं किन्तु इनका रंग हल्का पीला होता है। फूल छोटे छोटे पीतवर्ण के सरसों के आकार के होते हैं। फल गोल कुछ चिपटे होते हैं। फलों के ऊपर रेखायें बनी होती हैं, जो इस एक फल को अनेक फांकों में विभक्त कर देती हैं। इसकी गुठली कठोर एवं धारीदार होती है।

पुष्पकाल—शरद् ऋतु। प्रतिनिधि—काबुली हरड़।
फलपाककाल—शिशिर ऋतु का अवसान। मारक—मधु, बादाम।
उपयोगी अंग—छाल, फल, बीज।

वक्तव्य—आंवले का वृक्ष भारतीय संस्कृति के अनुसार पूज्य माना गया है, अतएव इसको घर के पास या बगीचों में लगाया जाता है। कार्तिकी अक्षय नवमी के दिन इस वृक्ष की पूजाकर इसके नीचे ब्राह्मणों को भोजन कराने का बहुत बड़ा माहात्म्य है। इसके पश्चात् फाल्गुन शुक्ल एकादशी=आमलकी एकादशी के दिन पुनः इसकी पूजा की जाती है और प्रसाद के स्वरूप में इसी के फल को खाया जाता है। धार्मिक दृष्टिकोण को रहने दीजिये, महर्षि अग्निवेश ने 'कर-प्रचितीय रसायनपाद' में माघ या फाल्गुन में आमलक संग्रह का निर्देश किया है और लिखा है कि इसी समय के आंवले यथोक्त गुणवान् होते हैं। अतः हमारे सभी धार्मिककृत्य प्रकारान्तर से स्वास्थ्य सम्वर्धन के लिये ही निर्दिष्ट हैं ॥१४॥

प्राचीनामलकम् (पानी आंवला)

प्राचीनामलकं त्रिदोषशमनं किञ्चिद्गुरुत्वान्वितम्।

यथाह भावमिश्रः—

प्राचीनामलकं लोके पानीयामलकं स्मृतम्।
प्राचीनामलकं दोषत्रयजिज्ज्वरघाति च ॥ भा० प्र०।

भाषान्तरों में नाम—सं०-पानीयामलकम्। हिं०-पानी आंवला बं०-पानी अम्बरा। म०-पान आंवले। गु०-पाणिआंवला। इं०-फ्लैकार शियाकाटाफ्रैक्टा Flacaurtia catafiacta. लै०-फ्लारोमोंचियाः Flaro montchii.

गुण—पानी आंवला त्रिदोष नाशक तथा कुछ भारी होता है।

परिचय—यह आंवले के आकार-प्रकार का एक कांटेदार वृक्ष है। इसं फल छोटे, लालवर्ण के, पत्र लम्बाई लिये होते हैं।

श्लेष्मातकम् (लिसोढ़ा)

शीतं स्वादु कफापहं गुरुफलं श्लेष्मातकस्य स्मृतम् ॥

यथाह चरकः—

श्लेष्मलं मधुरं शीतं श्लेष्मातकफलं गुरु। च. सू. २७।

यथाह सुश्रुतः—

गुरुश्लेष्मातकफलं कफकृन्मधुरं हिमम्॥ सु. सू. ४६।

भाषान्तरों में नाम—सं०-बहुवारः, शीतः, उद्दालः, बहुवारकः, शेलु श्लेष्मातकः, पिच्छिलः, भूतवृक्षकः। हिं०-लिसोढ़ा (ड़ा)। बं०-बहुयार म०-भोंकर। गु०-गुन्दी। क०-चेल्लु गोंदिनी। तै०-नाकेरु। ता०-विडि फा०-सपिस्तां। इं०-नैरोलीव्ड सेपिस्टन Narrow Leaved Sepis tun. लै०-कोर्डिया माइजा Cordia Myza.

गुण—लिसोड़ा का फल शीतल, स्वादिष्ट, कफनाशक तथा गुरुपाकी होत है। यही फल पक जानेपर कफकारक होता है, ऐसा सुश्रुत का मत है। य भाव प्रकाश में भी लिखा है।

परिचय—लिसोड़ा का पेड़ मध्यम कद का होता है। इसका तना टेढ़ामेढ़ा सा होता है। कच्चे फल हरे पकने पर हलके पीले होते हैं। इसी की एक छो जाति होती है उसको गोंदी कहते हैं। इसके फूल भी बाजारों में बिकने आते हैं। इनका वर्ण हरिताभ श्वेत होता है। ये गुच्छाकृति होते हैं।

पुष्पकाल—शरद ऋतु का अन्त।

फल परिपाककाल—वर्षा ऋतु।

उपयोगी अंग—छाल, पत्र, पुष्प, फल।

मारक—उन्नाब।

वक्तव्य—लिसोड़ा का अधिक सेवन हृदय के लिये हानिकारक है।

खर्जूरम् (खजूर)

खर्जूरं गुरु शीतलं समधुरं वृष्यं वपुःपुष्टिदम्।
पथ्यं पित्तसमीरयोश्च श्वयथौ शोपेऽभिघातेऽपि च ॥१५॥

यथाह चरकः—

मधुरं बृंहणं वृष्यं खर्जूरं गुरु शीतलम्।
क्षयेऽभिघाते दाहे च वातपित्ते च तद्धितम् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु।
रसे पाके च मधुरं खार्जूरं रक्तपित्तनुत् ॥ सु. सू. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-भूमि खर्जूरिका, स्वाद्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काककर्कटी, स्वादुमस्तका। हिं०-खजूर, पिण्डखजूर। बं०-खजूर। म०-सिंदी, खजूरी। गु०-खजूरी, खारेक। क०-इंचिलु। तै०-इंटा चेट्टु। फा०-तमररुतब। अ०-खुर्मातर, खुर्माखुश्क। इं०-डेटपाम Date Palm. लै०-फिनिक्स मोंटेना Phoenix Montana.।

गुण—खजूर का फल; भारी, शीतल, मधुर, वीर्यवर्धक, शरीर को पुष्ट करने वाला, वात-पित्त का शामक है। सूजन, क्षय तथा अभिघात के रोगी के लिये हितकारक है।

परिचय—खजूर आकृति भेद से तीन प्रकार का प्राप्त होता है। खजूर, पिण्ड खजूर और छुहारा। १—खजूर, यह सब जगह प्रायः देखा जाता है,

इसके फल बहुत ही छोटे होते हैं, इनमें खाद्य अंश भी नाममात्र को होता है। २—पिण्ड खजूर, यह प्रथम खजूर से अच्छा खानेयोग्य होता है, यह पश्चि काबुल आदि देशों में होता है। ३—छुहारा, यह खजूर जाति का राजा, गु एवं स्वाद में विशिष्ट माना गया है। खजूर के पेड़ों से एक प्रकार का र निकाला जाता है जो मूत्रल, मादक, पित्तवर्धक, वात-कफशामक तथा अग्निवर्ध होता है। व्यापारी वर्ग खजूर तथा ताड़ के रस का ताड़ी या खजूरी नाम व्यापार करता है। इसके पेड़ पर्याप्त लम्बे शाखा रहित होते हैं। इसके प लम्बे होते हैं, इनकी चटाइयां बनकर बाजारों में बिकने आती हैं।

पुष्पकाल—शरद् ऋतु। प्रतिनिधि—किसमिस।

फलपाककाल—वसन्त ऋतु। मारक—बादाम।

उपयोगी अंग—फल, वृक्ष रस ॥१५॥

कदलीफलम् (केला)

वृष्यं श्लेष्मकरं तथा गुरुतरं रुच्यं च पित्तास्रजित्
किञ्चिच्छैत्ययुतं कषायमधुरं पक्वं कदल्याः फलम्
बल्यं ग्राहि कषायशीतलचलश्लेष्मापहं दुर्जरं
तत्पक्वेतरमेवमेव गदितं चारण्यरम्भाफलम् ॥१६॥

यथाह सुश्रुतः—

मोचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम्।
रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु ॥ सु. सू. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कदली, वारणा, मोचा, अम्बुसारा, अंशुमती, फला। हिं०-केला। बं०-केला। म०-केला। गु०-केबुं क०-कवाले। तै०-अरंटि। फा०-मावज, मौज। अ०-तना। इं०-प्लेनटेन Plantain. लै०-म्युसा सेपिएन्टम् Musa Sapientum.।

गुण—पका केला, वीर्यवर्धक, कफकारक, गुरुतर, रक्तपित्त का शामक, कुछ शीतल, कषैला तथा मधुर होता है। कच्चा केला, बलवर्धक, ग्राही, कषाय, शीतल, वात कफनाशक, देर में पचने वाला होता है। ये ही गुण जंगली केला में भी होते हैं।

परिचय—केला के पेड़ प्रायः सभी स्थानों में होते हैं इसके शाखा रहित अत्यन्त सुकुमार वृक्ष होते हैं। इसके बड़े लम्बे पत्ते होते हैं जो काण्ड के आवरण से निकलते हैं। इसके पेड़ में से निचोड़ने पर पर्याप्त मात्रा में जल निकलता है अतएव इसका एकनाम "अम्बुसारा" भी है। इसके फूल लाल बैगनी कोपलों के भीतर से निकलते हैं।

केला के शास्त्रोक्त भेद—माणिक्य, मर्त्य, अमृत, चम्पक, आदि अनेक केले के भेद माने गये हैं। गुण दोष की दृष्टि से ये उत्तरोत्तर निर्दोष गुणपूर्ण होते हैं। केला आम के समान सबका प्रिय फल है। शास्त्रीय जातियों के अतिरिक्त आजकल इसकी अनेकानेक जातियां देखने तथा खाने को प्राप्त होती हैं।

पुष्पकाल—	सदा—विशेष रूपेण शीतल काल।	प्रतिनिधि—शक्कर।
फलपाक काल—	सदा—विशेष रूपेण गरमी बरसात।	मारक—नमक, सोंठ,
उपयोगी अंग—	छाल का रस, कच्चा तथा पका फल। पत्र, पुष्प।	मधु, घृत।

प्रियालम् (चिरौंजी)

वृष्यं पित्तसमीरजिद् गुरुर्हिमं प्रोक्तं प्रियालोद्भवम्।

यथाह चरकः—

वातघ्नाः बृंहणा वृष्याः कफपित्ताभिवर्धनाः।
प्रियालमेषां सदृशं विद्यादौष्ण्यं विना गुणैः॥ च. सू. ४६॥

यथाह सुश्रुतः—

वातपित्तहरं वृष्यं प्रियालं गुरुशीतलम् ।
प्रियालमज्जामधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ।। सु. सू. ४६ ।।

भाषान्तरों में नाम—सं०-प्रियालः, खरस्कन्धः, चारः, बहुलवल्कलः राजादनः, तापसेष्टः, सन्नकद्रुः, धनुष्पटः । हिं०-चिरौंजी । बं०-पियाल म०-चार । गु०-चारोली । क०-चारबीज । तै०-सारूपपु । ता०-कार मरा । फ०-नुकलेखाजा । अ०-हब्बुस्समाना । लै०-बुकनेनिआ लेटि फोलिया Buchania Latri Folia. ।

गुण—चिरौंजी के फल, वीर्यवर्धक, वातपित्तशामक, भारी और शीतल होते हैं । जो गुण चिरौंजी के हैं वे ही उसकी गुठली के भी हैं ।

परिचय—चिरौंजी के पेड़ दक्षिण भारत में अधिकतर होते हैं । बाजार में मिलने वाली चिरौंजी का आयात यहीं से होता है, उत्तरीय पर्वत श्रेणियों में भी इसके पेड पर्याप्तमात्रा में देखे जाते हैं किन्तु उनमें से प्राप्त होने वाली चिरौंजी बाजार में प्राप्त होने वाली चिरौंजी से बिल्कुल पृथक् है स्वाद एवं गुण दोनों के एक होते हैं । इसके पेड़ सीधे काफी ऊंचे होते हैं । पत्ते सुई की भांति लम्बे विरल होते हैं । फूल शाखा के अग्रभाग में लगते हैं ।

पुष्पकाल—शरदृऋतु प्रतिनिधि—पिश्ता ।
फलपाककाल—वसन्तऋतु मारक—मधु ।
उपयोगी अंग—छाल, पेड़ का तेल, फल ।

कोलमज्जा (बेर की गुठली)

मज्जा कोलभवोऽपि तद्गुणयुतस्तृट् छर्दिकासान् जयेत् ।

यथाह भावमिश्रः—

यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम् ।
तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ।। सु. सू. ४६ ।।

गुण—बेर की गुठली में बेर के (औषधार्थ प्रयुक्त) समस्त गुण होते हैं, और यह प्यास, वमन तथा कास का शमन करती है।

वक्तव्य—बेर के गुण इसी अध्याय के ८ वें पद्य में देखें। केवल बेर की ही गुठली में यह विशेषता नहीं है अपितु सभी फलों की गुठलियोंमें उन-उन फलों के गुण पाये जाते हैं। इसके लिये शास्त्रीय वचन ऊपर उद्धृत कर दिया है।

करमर्दकम् (करौंदा)

स्यादम्लं करमर्दकं रुचिकरं तृष्णापहम् पित्तकृत् ॥१७॥

यथाह सुश्रुतः—

अम्लं तृष्णापहं रुच्यं पित्तकृत् करमर्दकम्।

यथाह भावमिश्रः—

करमर्द्द्वयं त्वाममम्लं गुरु तृषाहरम्।
उष्णं रुचिकरं प्रोक्तं रक्तपित्तकफप्रदम्।
तत्पक्वं मधुरं रुच्यं लघुपित्तसमीरजित् ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-करमर्दः, सुषेणः, कृष्णपाकफलः। हिं०-करौंदा। बं०-करमचा। म०-करवंदे। गु०-करमदां। क०-करिजिगे। तै०-वाका। इं०-जस्मीन फ्लावर्ड कैरीसा Jasmine Flowered carissa. लै०-कैरीसा कोरंदाल Carrissa corandal.।

गुण—करौंदा का फल, खट्टा, रुचिकारक, प्यास को शान्त करने वाला तथा पित्तवर्धक होता है।

परिचय—यह छोटा-बड़ा भेद से दो प्रकार का होता है, छोटे को करौंदी, बड़े को करौंदा कहते हैं। इसके पेड़ झाड़ी के आकार के होते हैं, इसके फल क्रमशः हरे, लाल, काले होते हैं। पत्ते चिकने तथा गोल होते हैं। इसके तने में कांटे भी होते हैं। फूलों का रंग सफेद होता है। इसके कच्चे फलों को काटने पर दूध निकलता है।

पुष्पकाल—ग्रीष्म ऋतु मारक—नमक, मिर्च, मीठा।

फल पाककाल—वर्षा ऋतु का अन्त।

उपयोगी अंग—पत्र, पुष्प, फल, मूल।

वक्तव्य—कचा करौंदा मलावरोधक, पका करौंदा शीतल तथा पित्त का अनुलोमक होता है, इसकी जड़ का क्वाथ उदर शूल एवं मन्दाग्नि का शामक है ॥१७॥

जम्बू (जामुन)

स्रोतोमूत्रपुरीषरोधनकरं कण्ठाहितं जाम्बवम्।
पित्तश्लेष्मनिषूदनं गुरुतरं स्याद्वातलं शीतलम् ॥

यथाह चरकः—

जाम्बवं कफपित्तघ्नं ग्राहि वातकरं परम् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

अत्यर्थं वातलं ग्राहि जाम्बवं कफपित्तजित् ॥ सु. सू. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-फलेन्द्रा, नन्दी, राजजम्बू, महाफला, सुभिपत्रा, महाजम्बु। हिं०-बड़ी जामुन, फरेन्द जामुन। बं०-बड़ जाम, गोलापजाम। म०-थोरजांवल, राजले। क०-नीरलह। तै०-पेद्दानेरडी। इं०-जाम्बुलट्री Jmbultree लै०-युजनिया जाम्बोलेना Eugenia Jambolana.

गुण—जामुन स्रोतों में रुकावट करती है, मूत्र, पुरीष को रोकती है, गले के लिये अहितकर, कफ और पित्त का शमन करती है, भारी, वातकारक तथा शीतल होती है।

परिचय—जामुन के पेड़ भारत में सर्वत्र पाये जाते हैं। इसकी अनेक जातियां होती हैं। मूलतः आकार भेद से यह दो प्रकार का होता है। १—छोटा। २—बड़ा। छोटा जामुन, बड़ा फरेन्द। कुमाऊँ प्रान्त में भी यह पर्याप्त मात्रा में

होता है। वहाँ की भाषा में राजजम्बू = फरेन्द को "फौउन" कहते हैं। छोटे जामुन में गूदा नाममात्र को होता है। जामुन और फरेन्द के पेड़ समान आकार के होते हैं किन्तु पत्ते छोटे और बड़े होते हैं। इसके पत्ते चिकने होते हैं, जामुन के फूल पीले रंग के मञ्जरी के आकार के होते हैं।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु।

फलपाककाल—शरद् ऋतु।

उपयोगी अंग—छाल, पत्ते, बीज, गुठली।

प्रतिनिधि—जामुन का सिरका।

मारक—नमक, सैन्धा नमक।

वक्तव्य—इसका सिरका तथा आसव बनाया जाता है, जिसका औषधार्थ उपयोग होता है। इसके छाल का स्वरस बकरी के दूध में मिलाकर देने से बच्चों के अतिसार में लाभ होता है। गले के शोथ में भी इसका प्रयोग लाभ कर होता है। मधुमेह के रोगी के लिये यह पथ्य है।

कपित्थः (कैथ)

सर्वग्राहि विषापहं तदितरं कण्ठाहितं दोषलम्।
हिक्काछर्घरुचित्रिदोषशमनं पक्वं कपित्थं स्मृतम्॥ १८॥

यथाह चरकः—

कपित्थमामं कण्ठघ्नं विषघ्नं ग्राहि वातलम्।
मधुराम्लकषायत्वात्सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्॥
परिपक्वं तु दोषघ्नं विषघ्नं ग्राहि गुर्वपि॥ च. सू. २७॥

यथाह सुश्रुतः—

आमं कपित्थमस्वर्यं कफघ्नं ग्राहि वातलम्।
कफानिलहरं पक्वं मधुराम्लरसं गुरु॥
श्वासकासारुचिहरं तृषाघ्नं कण्ठशोधनम्॥ सु. सू. ४६॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कपित्थः, दधित्थः, पुष्पफलः, कपिप्रियः, दधिफलः, करिबल्लभः, दन्तशठः। हिं०-कैथ। बं०-कयेतवेल। म०-कवठ। गु०-कोठ। तै०-एलांगाकाया। क०-बेल्लु। इं०-वुड एपल Wood apple या-एलीफैंट एपल Elephont apple लै०—फेरोनिया एलीफेंटिनम Feronia Elephantinum.

गुण—कच्चा कैथ गला बैठाने वाला तथा दोष-प्रकोपक होता है। अधपका कैथ मलावरोधक एवं विष नाशक होता है। पका कैथ—हिचकी, उबकाई, और त्रिदोष शामक होता है।

परिचय—कैथ वेल का सजातीय फल है। इसके वृक्ष सर्वत्र पाये जाते हैं। वृक्ष की छाल सफेद भूरे रंग की होती है। इसके पत्ते छोटे-छोटे मेंहदी के आकार के होते हैं फूल छोटे तथा सफेद रंग के होते हैं। फलों का छिलका सफेद खुरदरा होता है।

पुष्पकाल—वर्षा ऋतु। प्रतिनिधि—वेल।
फलपाककाल—हेमन्त ऋतु का अन्त। मारक—गुड़
मारक—आलू अथवा कन्दशाक।
उपयोगी अङ्ग—छाल, पत्र, पुष्प, फल, निर्यास (गोंद)।

वक्तव्य—कैथ को संस्कृत में 'करि वल्लभ' तथा अंग्रेजी में 'एलीफेंट एपिल' कहा गया है। इसका एक रहस्य है। हाथी कैथ के फल को समूचा निगल लेता है और समूचा ही गोबर कर देता है, आश्चर्य है उसके भीतर का गूदा कहाँ गया इसका उत्तर ईश्वर ही दे सकता है, इस सम्बन्ध में एक सुभाषित प्रसिद्ध है यथा—

समायाति यदा लक्ष्मीर्नारिकेलफलाम्बुवत्।
विनिर्याति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत्॥

प्रवाहिका में कैथ का निर्यास शहद या आंवला की चासनी के साथ देने से अच्छा लाभ करता है। कैथ के पत्ते शीतल, कषाय होने के कारण मसूड़ों को दृढ़ करते हैं। जहरीले कीड़े मकोड़े के दंश स्थान पर फल का छिलका या पेड़ की छाल बांधने से विष उतर जाता है ॥१८॥

नारिकेल (नारियल)

स्निग्धं वस्तिविशोधनं सुमधुरं पित्तापहं शीतलम् ।
वृष्यं बृंहणतर्पणं च गुरु च स्यान्नारिकेलीफलम् ।
वृष्यं तृट्चलहृल्लघुज्वलनकृत्तोयं तदन्तर्गतम् ॥१९॥

यथाह चरकः—

... ... नारिकेलफलानि च ।
बृंहणस्निग्धशीतानि बल्यानि मधुराणि च ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

नारिकेरं गुरु स्निग्धं पित्तघ्नं स्वादु शीतलम् ।
बलमांसप्रदं हृद्यं बृंहणं वस्तिशोधनम् ॥ सु. सू. ४६ ॥

स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं वस्तिशोधनम् ।
वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नारिकेरोदकं गुरु ॥ सु. सू. ४५ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-नारिकेलः, दृढफलः, लाङ्गली, कूर्चशीर्षकः, तुङ्गः, स्कन्धफलः, तृणराजः, सदाफलः । हिं०-नारियल । बं०-नारिकेल । म०-नारली । गु०-नालीएर । तै०-टेंकोचां । ता०-टेन्ना । फा०-जोज़ हिन्दी-नारियल । अ०-नारजिस । इं०-कोकोनट पाम Coconut palm. लै०-कोकोसन्यूसी फेरा Cocosnusifera.

गुण—नारियल की गिरी, स्निग्ध, वस्ति शोधक, मधुर, पित्तनाशक, शीतल, वीर्यवर्धक, पुष्टिकारक, तृप्तिकर्ता और भारी होती है । नारियल का जल धातु-वर्धक, प्यास तथा वातनाशक, हलका और अग्निवर्धक होता है ।

परिचय—नारियल के पेड़ बम्बई, बंगाल, मद्रास आदि समुद्र के तटवर्ती प्रदेशों में पाये जाते हैं । यह शाखाहीन कूर्च शीर्षक वृक्ष है । इसके फल पत्तों के जोड़ों में लगते हैं । इसके फूल झोंपदार गहरे पीले रंग के होते हैं । ईश्वर की विचित्र रचना है । आश्चर्य है इतना ठोस खोपड़ा के भीतर यह मधुर जल-

राशि कहाँ से आ जाती है। जो काल परिणामानुसार गरी का रूप धारण कर लेती है। इसके फूल पत्ते आदि का कोई भी अंश ऐसा नहीं जो व्यर्थ चला जाय। नारियल के उपयोगो पर ध्यान दें।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु।　　　　प्रतिनिधि—पिस्ता, बादाम।

फल पाककाल—शरद् ऋतु।　　　　मारक—मिश्री।

उपयोगी अंग—फूल, फल, जल, जटा, तैल, शिरा (रेसा)।

सेवम् (सेव)

पित्तापहं ज्वरहरं कफनाशनं चा-
रुच्यग्निपुष्टिजननं लघु सेवसंज्ञम् ॥

यथाह चरकः—

कषायमधुरं शीतं ग्राहि सिम्वितिकाफलम्। च. सू. २७।

यथाह सुश्रुतः—

कषायं स्वादु संग्राहि शीतं शिञ्चितिकाफलम्॥ सु. सू. ४६।

भाषान्तरों में नाम—सं०—मुष्टिप्रमाणम्, वदरम्, सेवम्, सिम्वितिकाफलम्, सिञ्चितिकाफलम्। हिं०—सेव। वं०—सेऊ। म०—मोठे बोर। गु०—सेवफल। क०—सेव। अ०—तुफाह। इं०—एपल Apple लै०—पाइरस मेलस Pyrus Malus.

गुण—सेव का फल, पित्तनाशक, ज्वरहर, कफशामक, अरुचिहर, अग्निवर्धक, पुष्टिकारक तथा लघु होता है।

परिचय—सेव भारतवर्ष के शीत-प्रधान स्थानों में पाया जाता है। सेव की ही आकृति का एक जंगली फल होता है, जिसको नैनीताल, अल्मोड़ा आदि स्थानों में 'घिङारू' कहते हैं। इसके पत्ते एवं फल छोटे होते हुए भी आकार में ज्यों के त्यों सेव के सदृश होते हैं। इसमें भी वे सभी गुण अल्पमात्रा में होते हैं जो सेव में होते हैं।

पुष्पकाल—शरद् ऋतु। प्रतिनिधि—बिहीदाना।

फल पाककाल—ग्रीष्मान्त से वर्षा ऋतु पर्यन्त। मारक—दालचीनी, मधु।

उपयोगी अंग—पत्र, पुष्प, फल।

वक्तव्य—"मुष्टिप्रमाणं बदरम्" इस पर्यायवाची नाम से अनुमान होता है कि यह बेर की जाति का, नहीं-नहीं बेर = कर्कन्धु = कोल की आकृति का किन्तु उससे बड़ा होता है। वनस्पति विज्ञान की देन से आज सेब अनेक जातियों तदनुसार अनेक वर्णों एवं आकारों में सुलभ है। वास्तव में इसके गुण-धर्मों को देखते हुए ऐसा लगता है कि इसको 'सेव' न कहकर 'सेव्य' कहना चाहिये।

फल्गु (अञ्जीर)

सुस्वादु पाकरसयोर्गुरु शीतलञ्च।
श्लेष्मामवातकरमञ्जिरमग्निशत्रु ॥ २० ॥

यथाह चरकः—

तर्पणं बृंहणं फल्गु गुरु विष्टम्भि शीतलम् ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

विष्टम्भि मधुरं शीतं फल्गुजं तर्पणं गुरु ॥सु० सू० ४६॥

भाषान्तरों में नामः—सं०-काकोदुम्बरिका, फल्गु, मलयू (पू), जघनेफला। हिं०-अञ्जीर। फा०-अञ्जीर। अ०-तीन। इं०-फिगट्री Figtree। लै०-फाइकस केरिका Ficus Cayrica.

गुण—अञ्जीर का फल अत्यन्त मधुर, रस और पाक में भारी, शीतल, कफ एवं आमवात कारक तथा पाचकाग्नि को मन्द करता है।

परिचय—इसके वृक्ष नेपाल की तराई से लेकर अल्मोड़ा, गढ़वाल, नैनीताल तथा बंगाल, मध्यभारत एवं दक्षिण भारत आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

यह वर्ण भेद से लाल और काला दो प्रकार का होता है। घरेलू और जंगली भेद से भी दो प्रकार का होता है। बगीचों में लगाये हुए अंजीर बड़े अधिक स्वाद वाले तथा जंगलों में स्वयं उत्पन्न, छोटे तथा अल्पस्वाद वाले होते हैं। कूर्मांचल (कुमाऊँ) प्रदेश में लाल वर्ण के अञ्जीर को 'तिमिल' कहते हैं और काले वर्ण के अञ्जीर को 'बेड़ू' कहते हैं। इसके वृक्ष पर्याप्त ऊँचे होते हैं, यह वृक्ष क्षीरी वृक्षों की गणना में आता है।

पुष्पकाल—शरद् ऋतु। प्रतिनिधि—चिलगोजा, मुनक्का।

फल पाककाल—ग्रीष्म ऋतु। मारक—बादाम।

उपयोगी अंग—छाल, पत्र, फल।

वक्तव्य—जिस प्रकार सेव आदि अन्य फल पकने के बाद चिरकाल तक सुरक्षित रखे जा सकते हैं, उस अर्थ में इसका नाम फल्गु अर्थात् व्यर्थ, ठीक ही है।

यद्यपि गुण-धर्मों की साम्यता के कारण हमने भी यहाँ पर तुलनात्मक दृष्टि से चरक-सुश्रुत के वे उद्धरण जो फल्गु के वर्णन में लिखे गये हैं, उद्धृत किये हैं किन्तु फल्गु शब्द का = काकोदुम्बरिका के अर्थ में ही यत्र-तत्र प्रयोग हुआ है जिसे हिन्दी में कठ गूलर या कठूमर कहते हैं। हमारा अनुमान है कि, चरक एवं सुश्रुत में नामतः अञ्जीर का उल्लेख नहीं था अतएव वैद्यवर लोलिम्बराज ने गुणसाम्य का वर्णन कर क्षीरी वृक्षों में इसका भी समावेश दिखला दिया।

श्रीमल्लोलिम्बराजविरचिते वैद्यावतंसे फलवर्गः
समाप्तः।

—:o:—

अथ-फलशाकवर्गः

पटोलम् (परवल)

पाके स्वादु रुचिप्रदं क्रमिहरं हृद्यं पटोलं स्मृतम् ।

यथाह चरकः—

कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते । च. सू. २७ ।

यथाह सुश्रुतः—

कफपित्तहरं व्रण्यमुष्णं तिक्तमवातलम् ।
पटोलं कटुकं पाके वृष्यं रोचनदीपनम् ॥ सु. सू. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-पटोलः, कूलकः, तिक्तः, पाण्डुकः, कर्कशच्छदः, राजीफलः, पाण्डुफलः, राजेयः, अमृताफलः, बीजगर्भः, प्रतीकः, कुष्ठहा, कासखञ्जनः । हिं०-परवल, परोरा । बं०-तितूपल्ता । म०-पड़वल । गु०-परवल । क०-पडवल । ते०-अडविपोट्ल । ता०-काट्टुपुटोल । इं०-सेस्पेंडुला Sespandula लै०-ट्राइकौसेन्थस डायोयिका Trichosanthesdioica.

गुण—परवल का फल, पाक में मधुर, रुचिवर्धक, क्रिमिनाशक तथा हृदयको बल देता है ।

परिचय—कड़वा, मीठा (स्वाद) भेद से परवल दो प्रकार का होता है। कड़वा जंगलों, खेतों की मेड़ों में स्वयं उत्पन्न होता है। इसका कांड तथा पत्ते खरदरे होते हैं। फूल सफेद, फल आरम्भ में हरे पकने पर लाल होते हैं। कड़वे परवल की अपेक्षा मीठा परवल बड़ा तथा बड़ीहरड़ के आकार का होता है।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु का आरम्भ । प्रतिनिधि—मीठा अथवा कड़ुआ ।
फल पाककाल—शरद् ऋतु का आरम्भ । मारक—घी, कालीमिर्च ।
उपयोगी अंग—पञ्चाङ्ग (मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल)

शाक भेद—पत्र, पुष्प, फल, नाल, कन्द, संस्वेदज = छत्राकादि भेद से शाक छः प्रकार के होते हैं। इनमें पत्रशाक से पुष्पशाकादि उत्तरोत्तर गुरु होते हैं।

कर्कोटकी (खेखसा)

स्यात्कर्कोटकमप्यरोचकहरं स्वादु त्रिदोषापहम् ।

यथाह भावमिश्रः—

कर्कोटी मलहृत् कुष्ठ हृल्लासारुचिनाशिनी ।
श्वासकासज्वरान् हन्ति कटुपाका च दीपनी ॥ भा०प्र० ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कर्कोटी, पीतपुष्पा, महाजाली। हिं०-ककोड़ा, खेखसा। बं०-काकरोला। म०-करटोलें, काटली। गु०-कंटोला, कडली। ते०-अंगोरकर। लै०-मोमोर्डिका डायोयिका Momordica dioica.

गुण—कर्कोटकी का फल अरुचि का नाशक, मधुर और त्रिदोष को शमन करने वाला होता है।

परिचय—खेखसा की गणना शाक वर्ग में की जाती है। यह वर्षा ऋतु में पैदा होता है। इसके दो भेद होते हैं। कर्कोटी—इसके जड़ में कन्द होता है। २—वन्ध्या कर्कोटी—यह कन्दहीन होता है। इसके फूल पीले, फल छोटे कांटेदार करेला के आकार के, फल के भीतर बीज पकने पर लाल वर्ण के होते हैं।

पुष्पकाल—वर्षा ऋतु। प्रतिनिधि—अञ्जीर।
फलपाक काल—हेमन्त ऋतु का अन्त। मारक—धनियां।
उपयोगी अंग—पत्र, फल, कन्द।

वक्तव्य—इसका कन्द उचित मात्रा में रेचक होता है।

वृन्ताकम् (बैंगन)

वृन्ताकं कटुतिक्तमुष्णमधुरं क्षारं क्षुधादीपनम् ।
हृद्यं रुच्यमपित्तलं कफमरुज्जित्सर्वशाकोत्तमम् ॥२१॥

यथाह वाग्भटः—

वार्ताकं कटुतिक्तोष्णं मधुरं कफवातजित्।
सक्षारमग्निजननं हृद्यं रुच्यमपित्तलम्॥ वा. सू. ६॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—वृन्ताकं, वार्ताकु, भण्टाकी, भण्टिका। हिं०—बैंगन, भण्टा। कु०—भट्ट। बं०—बैगुन गाछ। म०—वांगे। गु०—टिंगणा, वन्ताकड़ी। क०—वदने, कार्चिगिड। तै०—वंकाथी। ता०—कत्तरिक्काई। फा०—बादंगान्। अ०—बादंजान्। इं०—ब्रिंजल Bringle। लै०—सोलेनम् मेलंजीना Solanum Melangena

गुण—बैंगन, कटु, तीता, उष्ण, मधुर, क्षार, क्षुधावर्धक, हृदय का हितकारी, रुचिकर, पित्तशामक, वातकफ नाशक और सभी शाकों में श्रेष्ठ होता है।

परिचय—इसकी अनेक जातियां हैं। फसल की दृष्टि से यह वर्ष में दो बार बोया जाता है। इसकी एक फसल गर्मियों में होती है, दूसरी जाड़ों में। इसके क्षुप छोटे-छोटे कांटेदार होते हैं। फूल नीले, पत्ते लम्बे उलटी तरफ प्रायः कांटे वाले, फल गोल या लम्बे होते हैं। इनका रंग बैंगनी, हरा, पीला, हरा अथवा सफेद होता है।

पुष्पकाल—वसन्त अथवा शरद्। मारक—सरसों का तेल, हींग।

फलकाल—वसन्त अथवा शरद्।

उपयोगी अंग—फल।

वक्तव्य—बैंगन शाकों में उत्तम होता है इस सम्बन्ध में एक सुभाषित—

"भोजनं धिगवृन्ताकं वृन्ताकं धिगवृन्तकम्।
धिग्वृन्तकमतैलाक्तं तैलाक्तं धिगरामठम्॥"

अर्थात् तेल में हींग का छौंक लगाकर पकाया हुआ बैंगन सर्वोत्तम होता है। [इ]सका स्वाद जिसने खाया हो वही जान सकता है॥ २१॥

कारवेल्लम् (करेला)

जयति जयिनमग्निं दुर्जरान्नेषु कर्तुम् ।
पटु सकटु कफघ्नाग्रेसरं कारवेल्लम् ॥

प्रकारान्तरेण कारवेल्लं स्तौति—

जाम्बूनदीयां प्रतिमां यदीयां वक्षःस्थले वामदृशो वहन्ति ।
अशेषशाकावलिमण्डनत्वं तत्कारवेल्लं न लभेत कस्मात् ॥२२॥

यथाह वाग्भटः—

कारवेल्लं सकटुकं दीपनं कफजित् परम् । वा० सू० ६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कारवेल्लं, कठिल्लं, कारवेल्ली (क्षुद्रा हिं०-करेला, बं०-करोला, म०- कारलें, गु०-करेलुं, तै०-काकर, ता० पाकल् । फा०-कारेलाह । अ०-किस्साउल हिमार । इं०-हेयरी मोर्डि Hairy Mordica. लै०-मोमोर्डिका कैरेंटिआ Momoardic muricata.

गुण—करेला गरिष्ठ पदार्थों को पचानेवालों में सर्वश्रेष्ठ है, ती तथा कफनाशकों में अग्रणी है । ग्रन्थकर्ता द्वारा करेला की प्रशंसा—कटाक्ष नेत्रोंवाली रमणियाँ जिस करेला को स्वर्णमय आभूषण के रूप में अपने वक्षःस्थ पर धारण करती हैं, ऐसा वह करेला सम्पूर्ण शाक श्रेणी में श्रेष्ठता को धारण न करता क्या ? अपितु करता ही है ।

परिचय—करेला लतावर्गीय शाक है । यह जंगली और घरेलू भेद से प्रकार का होता है । जंगली करेली अपने आप पैदा होती है । यह आकार छोटी एवं गुण में हीन होती है और स्वाद में अधिक तीती होती है ।

पुष्प एवं फलकाल—ग्रीष्म-वर्षाऋतु । मारक—तेल, प्याज, खटा
उपयोगी अंग—फल, फल स्वरस, लता स्वरस ॥ २२ ॥

बिम्बी [कन्दूरी]

श्वसनकसनतृष्णायक्ष्मपित्तास्रपित्त-

ज्वरदवथुकफघ्नस्तन्यकृद् बिम्बसाहुः ॥ २३ ॥

यथाह धन्वन्तरिः—

तुण्डिका कफपित्तासृक् शोथपाण्डुज्वरापहा
श्वासकासापहं स्तन्यं फलं वातकफापहम् ॥ ध० नि० ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—बिम्बी, रक्तफला, तुण्डी, तुण्डिकेरी, बिम्बिका, ओष्ठोपमफला, पीलुवर्णी। हिं०—कुन्दरू, कन्दूरी। कु०—ग्वाल-काकड़ी। बं०—तेलाकुचा। म०—तोंडली। गु०—टंडोरा। क०—सहिदोड़े। तै०—तोडंतिग। इं०—ओलिवनम् Oeivanum. लै०—कोकीनिया इण्डिका Coccinia indica.

गुण—कन्दूरी का फल श्वास, कास, तृषा, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, ज्वर, जलन और कफ का विनाशक है तथा स्तन्य=दूध को बढ़ाता है।

परिचय—यह लतावर्गीय शाक है। इसकी लता भी करीब-करीब करेलाकी लता के आकार की होती है। लता में मुलायम कांटे-से होते हैं। फूल नीले, फल के ऊपर रेखायें, फल का रंग आरम्भ में हरा और पकने पर लाल हो जाता है।

पुष्पकाल—वर्षाऋतु। प्रतिनिधि—लौकी।

फलपाक काल—शरदृऋतु। मारक—त्रिकटु।

उपयोगी अंग—पञ्चाङ्ग।

वक्तव्य—उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त एक महान् दुर्गुण भी इसमें है, जिसका उल्लेख महर्षि चाणक्य ने किया है। यथा—'सद्यो बुद्धिहरा तुण्डी", यह बुद्धि की विनाशक है, अतः शिक्षार्थियों के लिए यह अपथ्य है। इसका सीधा प्रभाव मूत्रसंग्राहकत्व है।

विम्बी का एक नाम है 'ओष्ठोपमफला"। इसके फलों की उपमा ओष्ठों से दी जाती है। देखिये इसी ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकर्ता का मङ्गलाचरण "अधरन्यक्कृतविम्बा" ॥ २३ ॥

कोशातकी [तोरई]

पित्तानिलघ्नं कफजिद् विपाकात् पथ्यं ज्वरे स्वादु रसोपपन्नम्।
हुताशनोद्दीपनभेदनञ्च कोशातकं शाकवरं वदन्ति ॥ २४ ॥

यथाह सुश्रुतः—

रक्तपित्तहराण्याहुर्हृद्यानि सुलघूनि च।
कुष्ठमेहज्वरश्वासकासारुचिहराणि च ॥ सु० सू० ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—धामार्गवः, पीतपुष्पः, जालिनी, कृतवेधना, राजकोशातकी, राजिमत्फला। हिं०—तुरई, तोरई। कु०—तोरियां। बं०—घोंषा। म०—दोड़के। गु०—तुरयां। तै०—वीरकाया। क०—घरिवोर। इं०—एक्युटेंग्लेडकुकुम्बर—Acutangled cucumber. लै०—ल्युफाएक्युटेंग्युला Luffa Acutangula.

गुण—तोरई वात-पित्त नाशक, विपाक द्वारा कफ को जीतने वाली, ज्वर रोगी के लिये पथ्य, मधुररस युक्त, अग्निको प्रदीप्तकर मल का भेदन करनेवाली कही गई है। फल शाकों में इसको श्रेष्ठ कहा है।

परिचय—कड़वी-मीठी भेद से तोरई दो प्रकार की होती है। कड़वी तोरई अन्य परिचय में सदृश होती हुई भी इसका फल आकार मीठी तोरई से छोटा होता है। औषधार्थ कड़ुतुम्बी = तोरई का प्रयोग, शाकार्थ मीठी तोरई का प्रयोग होता है। इसकी लता होती है, पत्र खरदरे, फूल हल्के पीले, फल लम्बे, आगे की ओर मोटे पीछे की ओर क्रमशः पतले तथा धारीदार होते हैं। इसी की एक दूसरी जाति घिया तोरई = नेनुआ है। इसके बीज काले होते हैं।

पुष्प एवं फल काल—वसन्तऋतु से शरद् ऋतु पर्यन्त प्रतिनिधि—घिया तोरई।
उपयोग—फल तथा बीज। मारक—घी, जीरा।

वक्तव्य—इसके बीजों का प्रयोग, यकृत् विकार, शिरःशूल, व्रणशोधन आदि में किया जाता है ॥ २४ ॥

कूष्माण्डम् [कुम्हड़ा]

शुक्रप्रदं वस्तिविशुद्धिहेतु जेतुं समर्थं पवमानपित्ते।
कूष्माण्डमुत्कृष्टमिहाखिलानां वल्लीफलानां भिषजो वदन्ति ॥२५॥

यथाह चरकः—

सक्षारं पक्वकूष्माण्डं मधुराम्लं तथा लघु।
सृष्टमूत्रपुरीषञ्च सर्वदोषनिवर्हणम् ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डं बालं मध्यं कफावहम्।
शुक्लं लघूष्णं सक्षारं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥
सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतोविकारिणाम् ॥ सु० सू० ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कूष्माण्डं, पुष्पफलं, पीतपुष्पं, बृहत्फलम्। हिं०-पेठा, सफेद कोहड़ा। कु०-भुज। वं-कुमड़ा म०-कोहला। गु०-भुरुं कोहलुं। फ०-दारकोहला। तै०-पुल्लाहा, फा०-रुमाकुदु। अ०-महद्दवब। इं०—पंपकिन, ह्वाइटपंपकिन Pumpkin, white Pumpkin. लै०-बेनीकासासेरिफेरा Benicassacerifera.

गुण—पेठा का फल वीर्यवर्धक, वस्तिशोधक, वात-पित्त शामक और लताओं में उत्पन्न होने वाले सभी फलों में श्रेष्ठ होता है।

परिचय—कुम्हड़ा = पेठा यह अपने नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध है। कूष्माण्ड नवमी के दिन इसके भीतर सोना और द्रव्य डालकर गुप्त दान किया जाता है। इसका, शाक, बड़ी तथा मिठाई बनाई जाती है। बीजों को छील कर खाया

जाता है या इनका तेल निकाला जाता है। इसकी लता होती है, पत्ते खुरदरे, फूल पीले होते हैं।

पुष्प काल—वसन्त ऋतु का प्रारम्भ।

फलपाक काल—ग्रीष्म ऋतु　　प्रतिनिधि—लौकी।

फलपाक काल—शरद्–हेमन्त ऋतु　　मारक–घी, चीनी;

उपयोगी अंग—फल, बीज।

अलाबूः [तुम्बी]

गुरु रूक्षमलाबु शीतलम्......।

यथाह भावमिश्रः—

मिष्टतुम्बी फलं हृद्यं पित्तश्लेष्मापहं गुरु।
वृष्यं रुचिकरं प्रोक्तं धातुपुष्टिविवर्धनम्॥ भा० प्र० शाकवर्गः॥

भाषान्तरों में नामः—सं०–अलाबूः, तुम्बी। हिं०–लौकी, घीया। कु०–तुमड़। बं०–लावु। म०–दूधिया भोंपला,। गु०–आलेड़ी। क०–डण्ड वलकाई। तै०–तियातुखली कायां। फा०–कदुएशीरीन्। अ०–किरा इं०–व्हाइट गूर्ड White Gorud. लै०–कुकुर्बिटा लाजिनेरिया Cucurbita lagenaria.

गुण—लौकी भारी, रूक्ष, शीतल तथा रस = मधुर रस से पूर्ण होती है।

परिचय—यह लौकी आकृति भेद से दो प्रकार की–लम्बी तथा गोल होती है। इसके लता, बीज आदि प्रायः कुम्हड़ा से मिलते जुलते हैं।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु का प्रारम्भ।

फलकाल—ग्रीष्मऋतु से हेमन्त ऋतु पर्यन्त।

उपयोगी अंग—फल तथा बीज।

त्रपुसम् [खीरा]

...　　...त्रपुसं पित्तहरं च मूत्रलम्॥

यथाह भावमिश्रः—

तद्बीजं मूत्रलं शीतं रूक्षं पित्तास्त्रकृच्छ्रजित् ॥ भा० प्र० फलवर्गः ॥

भाषान्तरों में नामः—सं०-त्रपुसं, कण्टकिफलं, सुधावासः, सुशीतलम्
हिं०-खीरा। कु०-काकड़। बं०-शंशा। म०-तौंसे काकडी खीरा। गु०-तांसली। क०-सौतेयकायि। तै०-दोजकडूय। ता०-मेहवेहरि। फा०-खियार खुर्द। अ०-कसद। इं०-कुकुम्बर Cucumber. लै०-क्युकुमिस सेटाइवस cucumus salivus.

गुण—खीरा अथवा उसके बीजों का सेवन पित्त शामक, अति मूत्रल-मूत्र को लानेवाला होता है।

परिचय—खीरा=बालम खीरा प्रसिद्ध शाक वर्गीय फल है, इसकी उपज समतलीय क्षेत्रों में अधिकांश देखी जाती है। इसी की जाति का एक खीरा कुमाऊँ प्रदेश में होता है। यह एक हाथ लम्बा १०-१२ इञ्च मोटा होता है। इसमें भी वे समस्त गुण हैं अथवा अधिक गुण हैं जिनका ऊपर वर्णन किया गया है। इसकी लम्बी लता होती है, पत्ते खरदरे, फूल पीले, बीज सफेद लम्बे होते हैं।

पुष्पकाल—वसन्त ऋतु का आरम्भ, प्रतिनिधि—बालमखीरा,
फल काल—पुष्पोद्गम के साथ ही साथ मारक—नमक, अजवायन।
फलपाक काल—शरद्-हेमन्त ऋतु।
उपयोगी अंग—फल, बीज।

वक्तव्य—चारों मगज में इसके बीजों का ग्रहण किया जाता है। मूत्रावरोध में पेडू पर इसके बीजों का लेप करने से मूत्र खुलकर आने लगता है।

करीरकम् [करील]

मधुरं तुवरं सतिक्तकं मतमाध्मानकरं करीरकम् ॥ २६ ॥

यथाह सुश्रुतः—

स्वादुतिक्तकटूष्णानि कफवातहराणि च ॥ सु. सू. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—करीरः, क्रकरः, अपत्रः, ग्रन्थिलः, मरुभूरुहः। हिं०—करीर, करील। वं०—करील। म०—नेवती। गु०—केरडां। क०—तिप्यतिगे। तै०—कुराक। फा०—कबार। इं०—कॉपर Coper। लै०—कैपरिस स्पाइ नोसा Capparis Spinosa.

गुण—करील का फल, मीठा, कसैला, हलका, कडुआ और आध्मान (अफरा) कारक होता है।

परिचय—यह मरुभूमि में उत्पन्न होने वाला एक कांटेदार गुल्म है। इसमें वसन्त ऋतु में गुलाबी रंग के फूल लगते हैं साथ ही फल लगने लगते हैं। ये फल पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों का आकार लम्बाई युक्त गोल होता है। करीर के फलों का आचार डाला जाता है और शाक बनाकर भी खाते हैं। इस वृक्ष का विकास वर्षा ऋतु में न होकर ग्रीष्म में होता है।

पुष्प तथा फलकाल—वसन्त ऋतु का आरम्भ।
उपयोगी अंग—फूल तथा फल।

वक्तव्य—इसका एक नाम—"अपत्र" भी है। यह पत्रों से रहित ही रहता है यहाँ तक कि वसन्त ऋतु में भी इसमें पत्र नहीं आते, अतएव पत्तों के विषय में साहित्यिक दृष्टि से इस वृक्ष को चाणक्य ने अभागा कहा है, यथा—"पत्रं नैव यदाकरीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्" ॥ २६ ॥

कन्दशाकवर्गः

पलाण्डुः [प्याज]

पवमानहरोऽम्लपित्तकर्ता
कटुतीक्ष्णो गुरुरीषदुष्णवीर्यः।
कफवातगुदांकुरेषु शस्त-
स्तनुते श्लेष्मबलानलान् पलाण्डुः ॥ २७ ॥

यथाह चरकः—

श्लेष्मलो मारुतघ्नश्च पलाण्डुर्न च पित्तनुत्।
आहारयोगी वल्यश्च गुरुर्वृष्योऽथ रोचनः ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

नात्युष्णवीर्योऽनिलहा कटुश्च तीक्ष्णोऽगुरुर्नातिकफावहश्च।
बलावहः पित्तकरोऽथ किञ्चित् पलाण्डुरग्निं परिवर्धयेत्तु ॥सु०सू०४६॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-पलांडुः, यवनेष्टः, दुर्गन्धः, मुखदूषकः। हिं०-प्याज। बं०-पेयाज। म०-कान्दा। गु०-डुंगली। क०-नीरुल्ली। तै०-गड्डु। फा०-पियाज। अ०-बस्ल। इं०-आनियन onion. लै०-एलियम सेपा Allum cepa.

गुण—प्याज वातनाशक, अम्लपित्तकारक, कडुआ, तीक्ष्ण (गन्ध), भारी, थोड़ा गरम, कफवातज अर्श (बवासीर) रोग में अत्यन्त लाभप्रद, कफ, बल तथा अग्निवर्धक है।

परिचय—प्याज कन्दवर्गीय शाक है। इसके पत्तों का भी शाक के लिए उपयोग होता है। इसके पत्ते गोलाई लिये लम्बे तथा भीतर से खोखले होते हैं। पलाण्डु=प्याज का कलेवर कई पतों का बना होता है। इन्हीं पत्तों के बीच से एक डण्डी निकलती है, जिसमें गोल झुमकेदार फूल लगता है। उसीमें बीज लगते हैं, जो सूखने पर काले हो जाते हैं। इसके कन्द सफेद तथा लाल वर्ण भेद से दो प्रकार के होते हैं।

पुष्पकाल—वसन्तऋतु।

बीज पाककाल—ग्रीष्मऋतुका आरम्भ।

प्रतिनिधि—सलजम।

मारक—सिर्का, नमक, मधु।

उपयोगी अंग—कन्द तथा पत्र ॥ २७ ॥

पत्रशाकवर्गः

वास्तूकम् [वथुआ]

अर्शस्त्रिदोषारुचि जन्तुहारि
विस्रंसनं बुद्धिबलाग्निकारि ।
क्षारं विपाके कटु वास्तुकं स्यात्
तद्वच्च चिल्ली लघुपत्रयुक्ता ॥ २८ ॥

यथाह सुश्रुतः—

कटुर्विपाके कृमिहा मेधाग्निबलवर्धनः ।
सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तूको रोचनः सरः ॥ सु. सू. ४६ ।

यथाह भावमिश्रः—

वास्तूकद्वितयं स्वादु क्षारं पाके कटूदितम् ।
दीपनं पाचनं रुच्यं लघु शुक्रबलप्रदम् ।
सरं प्लीहास्रपित्तार्शः क्रिमिदोषत्रयापहम् ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—वास्तूकं, वास्तुकं, क्षारपत्रं, शाकराट्। हिं०–वथुआ, चिल्ली । वं०–वेतुया । म०–चाकवत । गु०–वथवो, चीली। क०–चक्रवती । फा०–मुसलेमा । अ०–कतफ । इं०–व्हाइटगूज फुट white goose Foot. लै०–चिनोपोडियम अलवम Chenopodium album.

गुण—वथुआ अर्श, त्रिदोष, अरुचि तथा क्रिमि विनाशक होता है। मल को ढीला करनेवाला तथा बुद्धि, वल एवं पाचकाग्नि को बढ़ाता है। इसका विपाक क्षार तथा कटु होता है। ठीक ये ही गुण चिल्ली नामक वथुये के भेद में भी पाये जाते हैं।

परिचय—बथुआ जौ तथा गेहूँ के खेतों में स्वयं भी उत्पन्न होता है और बोया भी जाता है। इसके पत्तों को धोने पर एक प्रकार का चमकीला पदार्थ निकलता है, जो इसका जीवनीय तत्व है। यह प्रायः सर्वत्र देखा जाता है, तथापि शीत प्रदेशों में कम होता है। इसके फूल छोटे-छोटे हरे रंग के होते हैं। इसके बीजों का रंग काला होता है।

प्राप्तिकाल—शिशिर-वसन्त ऋतु। प्रतिनिधि—पालक।

उपयोगी अंग—पत्र-बीज। मारक—लौंग, काली मिर्च।

वक्तव्य—बथुआ की एक जाति बगीचों में दिखाई देती है। इसके फूल लाल मखमल जैसे अत्यन्त मुलायम एवं चिरस्थायी होते हैं। इसका उपयोग शाक के लिए नहीं होता ॥ २८ ॥

जीवन्ती

सञ्जीवनी कण्ठकृशाक्षिपथ्या
रसायनी मस्करिणामपथ्या।
जीवन्त्यनुष्णा मधुरा च गुर्वी
शाकेषु गुर्वी जयति त्रिदोषान् ॥ २९ ॥

यथाह सुश्रुतः—

चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती समुदाहृता ॥ सु. सू. ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-जीवन्ती, जीवनी, जीवा, जीवनीया, मधुस्रवा, मंगली, शाकश्रेष्ठा। हिं०-जीवन्ती, बं०-जीवई, मं०-हरणवेल। क०-होषहाले। गु०-मीठी खर खोडी। लै०-ड्रेगिया वेल्यूविलिस Dregia Valubilis.

गुण—जीवन्ती, जीवन प्रदान करने वाली, कंठरोगों दुबले-पतलों तथा नेत्र

रोगों में हित कारक, रसायन (स्वास्थ्य को स्थिर रखनेवाली), साधुओं के लिये अपथ्य शीतल, मधुर, गुरु, शाकों में श्रेष्ठ एवं त्रिदोष नाशक होती है।

परिचय—जीवन्ती का परिचय सन्देहास्पद है। तथापि यह चातुर्मास में उगती है। पत्र-हृदया कृति। फूल आँक=मदारके फूलों जैसे जामुनी छायावाले हल्के सफेद या पीले होते हैं। फल तोड़ने पर जिसमें से सफेद दूध निकलता है उसे जीवन्ती कहते हैं और जिसमें से फल तोड़ने पर पीला दूध निकलता है उसे 'स्वर्णजीवन्ती' कहते हैं।

काल—वर्षाऋतु।

उपयोगी अंग—पत्र-मूल ॥ २६ ॥

पालक्या [पालक]

पालक्यां त्विति वर्णयन्ति सुधियो गुर्वी सरा पिच्छिला।
शीता श्लेष्मकरी च... ... ...॥

यथाह भावमिश्रः—

पालक्या वातला शीता श्लेष्मला भेदिनी गुरुः।
विष्टम्भिनी मदश्वासपित्तरक्तकफापहा ॥ भा० प्र० शाकवर्गः ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-पालक्या, वास्तुकाकारा, छुरिका, चीरितच्छदा। हिं०-पालक। कु०, बं०-पालंग। म०-पालख। गु०-पालखनी। क०-पालक्य; फा०-अस्पनाख। इं०-स्पाईनेज-Spinage, लै०-स्पाइनेशिया ओलिरेशिया Spinasia oleacea.

गुण—द्रव्यगुण के विशेषज्ञों का कथन है कि पालक भारी, दोषों की अनुलोमक, चिपचिपी, शीतल तथा कफ कारक होती है।

परिचय—पालक प्रसिद्ध पत्र शाक है, इसकी जड़ को भी बारीक काटकर डाला जाता है। इसके पत्ते चौड़े, लम्बे होते हैं। पत्रनाल हरा अथवा लाल

होता है। बीज आने के समय इसके बीच में से एक कन्दली निकलती है जिसके अग्रभाग में बीज लगते हैं। इसके बीजों में गोखरू के बीज सदृश कांटे होते हैं।

काल—शीत ऋतु। प्रतिनिधि—कुलफा, लौकी।
उपयोगी अंग—पत्र, मूल, बीज। मारक—मांस, बादाम का तेल।

चञ्चू

... ...चञ्चुकमपि ग्राहीपरं तु स्मृतम्॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—चिञ्चा, चञ्चु, चञ्चुकी, दीर्घपत्रा, सतिक्तका। हिं—चञ्चु। कु०—चलमोड़ा। वं०—चेचकी। म०—चञ्चु भाजी। गु०—छुंछरी। तै०—चिन्त चट्ट। लै०—कारकोरस एक्युटेगुलेरिस Corchorus Eascicularis.

गुण—चञ्चू अत्यन्त मलावरोधक होता है।

परिचय—नैनीताल, अल्मोड़ा, गढ़वाल आदि में यह चलमोड़ा नाम से प्रसिद्ध है। इसी की एक बड़ी जाति है 'रोवड़ा'।

काल—वसन्तऋतु।
उपयोगी अंग—पत्र।

कुसुम्भम् [कुसुम्भ]

कौसुम्भं गुरुपित्तकारि कथितं।
रूक्षाम्लमम्लं रसम्॥

यथाह भावमिश्रः—

स्यात् कुसुम्भं वह्निशिखं वस्त्ररञ्जनमित्यपि।
कुसुम्भं वातलं कृच्छ्ररक्तपित्तकफापहम्॥ भा० प्र० ह० वर्गः।

भाषान्तरों में नाम—सं०—कुसुम्भं, वह्निशिखं, वस्त्ररञ्जनम्। हिं०—

कुसुम। बं०-कुसुम फूल। म०=कर्डिय। गु०-कुसुम्भी। क०-कुसुम्ब। तै०-अग्निशिखा। फा०-मास्कर। अ०-अखरीज। इं०-साफ्लावर Saw Fglower. लै०-कार्थेमसटिंकटोरियस Carthamus Tinerorius.

गुण—कुसुम्भ का शाक भारी, पित्तकारक तथा खट्टा होता है।

परिचय—कुसुम्भ को कार्तिक, अगहन मास में बोया जाता है। इसके तना, पत्ती तथा फूलों पर कांटे होते हैं। इसके फूल लालिमायुक्त पीले होते हैं, इनसे रंग का निर्माण किया जाता है। बीजों का रंग काला होता हैं, इनसे तेल निकाला जाता है।

पुष्पकाल—वसन्तऋतु।

बीज पाककाल—ग्रीष्मऋतु का आरम्भ। मारक—मधु।

उपयोगी अंग—पत्र, पुष्प, बीज।

चणकशाकम् [चना]

शाकं स्याच्चणकोद्भवं तु
मधुरं पाके रसे दुर्जरम्॥ ३०॥

यथाह भावमिश्र :—

रुच्यं चणकशाकं स्याद् दुर्जरं कफवातकृत्।
अम्लं विष्टम्भजननं पित्तनुदन्तशोथहृत्॥

गुण—चने का शाक पाक तथा रस में मधुर और देर में पचता है।

परिचय—यह सुप्रसिद्ध शाक है। शेष धान्य वर्ग में देखें।

काल—हेमन्त-शिशिर ऋतु।

उपयोगी अंग—पत्र-फल।

लोणीशाकम् [कुलफा]

लोणीका कफवातहृत् सलवणा स्वादुर्गुरुः शीतला।
सूक्ष्मा मूत्रमलप्रवर्तनकरी विष्टभ्य जीर्णा भवेत्॥
स्वर्यामं निखिलं निकृन्तति... ...।

यथाह चरक :—

शाकं गुरु च रूक्षं च प्रायो विष्टभ्य जीर्यति।
मधुरं शीतवीर्यञ्च पुरीषस्य च भेदनम्॥ च. सू. २७॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-लोणा, लोणी, बृहल्लोणी, घोटिका। हिं०—कुलफा, नोनिया। कु०—लुणियां। बं०—क्षुपेणुनी। गु०—लूणी। म०—खुरफा। क०—गोली। ते०—अइलकुस। ता०—कीरिल कीरई। फा०—खुलफा। अ०—बकल तुलहमक्का। इं०—पर्सलेन Purslane. लै०—पोर्चुईका-ओलिरेसिया Portuiaea olerdacea.

गुण—कुलफा का शाक कफ तथा वात नाशक, लवण रस प्रधान, स्वादु, देर में पचनेवाला, शीतल होता है। छोटी पत्ती का कुलफा मूत्रल, आध्मान-कारक, देर में पचनेवाला, स्वर को स्पष्ट करनेवाला, आमांश नाशक होता है।

परिचय—यह छोटे बड़े आकार भेद से दो प्रकार का होता है। इसके पत्ते मुलायम लम्बाई युक्त गोल तथा मोटे होते हैं। डण्डियां लालवर्ण की भूमि पर बिछी होती हैं। इसमें नमकीन पन तथा लुवाब रहता है। इसके बीज पित्त शामक होते हैं।

काल—वर्षा शरद् ऋतु।

सार्षपम् [सरसों]

... गुरूष्णं तथा सार्षपम्।
मूत्रदोषकरम् ...॥

यथाह चरकः—

गुरूष्णं सार्षपं बद्धविण्मूत्रं सर्वदोषकृत् ।। वा० सू० ६ ।।

यथाह सुश्रुतः—

पाके रसे चापि कटुः प्रदिष्टः सिद्धार्थकः शोणितपित्तकोपी ।

तीक्ष्णोष्ण रूक्षः कफमारुतघ्नस्तथागुणश्चासित सर्षपोऽपि ।।सु०सू०४६।

भाषान्तरों में नाम—सं०—सर्षपः, कटुकः, स्नेहः, तन्तुभः, कदम्बकः, सिद्धार्थः । हिं०-सरसों । बं०—सरिषा, म०-शिरस, गु०-सरवश, क०—विळीय सासिवे । तै०-पाच्चाअश्वालु । फा०-सर्षफ । अ०--हुर्फ अबीयद ले०-ब्रेसिका कम्पेट्रिस Brassica Combestris.

गुण—सरसों का शाक, गुरु, उष्ण तथा मूत्र मार्ग के रोगों का उत्पादक है।

परिचय—सरसों की फसल गेहूँ के साथ होती है । पौष-माघ में इसमें पीले फूल लगते हैं । इसके पत्तों का शाक, बीजों का तेल निकाला जाता है । आकृति भेद से यह लाल, पीली या गौरवर्ण की होती है । एक जाति इसकी और है जिसको 'राई' कहते हैं, यह आकार में छोटी तथा अधिक उष्ण वीर्यवाली होती है ।

शाककाल—अगहन-पौष ।
पुष्पकाल—पौष-माघ ।
बीजकाल—फाल्गुन-चैत्र ।
उपयोगी अंग—पत्र-बीज ।

वक्तव्य—सरसों का एक नाम "सिद्धार्थ" भी है । यद्यपि भावमिश्र ने गौर सर्षप का नाम सिद्धार्थ लिखा है किन्तु इसके अनेक तान्त्रिक प्रयोग तन्त्र शास्त्रों में वर्णित है । यह उन-उन अर्थ=कामनाओं को सिद्ध=पूर्ण करता है अतएव इसको सिद्धार्थ कहा गया है । सरसों का रक्षोघ्न होना निघण्टुकारों ने भी स्वीकार किया है । मीमांसाग्रन्थों में भी सर्षप के द्वारा भूतोत्सादन का विधान है ।

पोतकी (पोई)

सरा मदहरा गुर्वी स्मृता पोदकी ॥ ३१ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-पोतकी, पोदिका, मालवा, अमृतवल्लरी। हिं-पोई साक। बं०-पुई शाक। म०-मयाल। गु०-पोथी। क०-हरिडोलु बसले। तै०-बच्चलि। इं०-रेडमालाबार नाइट शोडस Red malabar Night sods. लै०-बसेला रुब्रा Bassela Rubra,

गुण—पोई का शाक, विरेचक (दस्तावर) मदनाशक, तथा देर में पचने वाला होता है।

परिचय—पोई लता वर्ग का शाक है। डण्डी का वर्ण लाल, पत्ते मोटे, हरे वर्ण के, फल की सेम मटर के आकार की, पकने पर काले वर्ण की होती है। उत्पत्ति स्थान पानी वाली भूमि के आस-पास।

काल—वर्षा तथा शरदृतु का आरम्भ। मारक—चीनी।

उपयोगी अंग—पत्र, बीज ॥ ३१ ॥

कलायशाकम् [मटर]

पवनकृत्कफपित्तनिषूदनम्, गुरु कलायजशाकमुदाहृतम् ॥

यथाह सुश्रुतः—

कलायशाकं पित्तघ्नं कफघ्नं वातलं गुरु।
कषायानुरसं चैव विपाके मधुरं च तत् ॥ सु० सू० ४६ ॥
ईषत्तिक्तं त्रिदोषघ्नं शाकं कटु सतीनजम् ॥ सु० सू० ४६ ॥
सतीनं=कलाय पत्रम्

गुण—मटर के पत्तों का शाक, वातकारक, कफ तथा पित्त नाशक होता है, इसका पाचन विलम्ब से होता है।

परिचय—अधिक धान्यवर्ग में देखें।

काल—शीतऋतु।

उपयोगी अंग—पत्र तथा मटर की सेम।

अगस्तिपुष्पम् (अगस्तिया का फूल)

मुनितरोः कुसुमं च निशान्ध्यनुत्
किमपि शीतमशीतमपि स्मृतम् ॥३२॥

यथाह सुश्रुतः—

वृषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि, कटुविपाकानि क्षयकासहराणि ॥
आगस्त्यं नातिशीतोष्णं नक्तान्धानां प्रशस्यते ॥ सु० सू० ४६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-अगस्त्य, बङ्गसेन, मुनिपुष्प, मुनिद्रुम । हिं० अगस्तिया का फूल । बं०-बक । म०-अगस्ता । क०-अगचे । ता०-अगस्ति तै०-अविसि । गु०-अगाथियो । इं०-सेसबोनियाग्राण्डि फ्लोरा Sasbonia Grandiflora.

गुण—अगस्तिया का फूल रतौंधी नाशक कुछ शीतल तथा कुछ गरम= मादिल होता है ।

परिचय—इसके पेड़ २०-२५ फुट ऊँचे, पत्ते शिरीष के पत्र के आकार के, फूल सफेद नीले, पीले तथा लाल ३-४ इञ्च लम्बे, सेम १०-१२ इञ्च लंबी तथा चार धारीदार होती है ।

पुष्पकाल—वर्षाऋतु का अन्त ।

फलपाककाल—शिशिर ऋतु का आरम्भ ।

उपयोगी अंग—पत्र, पुष्प, फल ।

वक्तव्य—भाव प्रकाश के टीकाकार श्री शालिग्राम वैश्य ने लिखा है कि अगस्त्योदय के समय यह फूलता है अतः इसका नाम अगस्त पड़ा है । जो भी हो, अंग्रेजी के अगस्त मास में भी यह फूलता है ॥ ३२ ॥

अश्वबला [मेथी]

अश्वबला कथिता किल रुक्षा मूत्रमलानिलबन्धनकर्त्री ॥

यथाह भावमिश्रः—

मेथिका वातशमनी श्लेष्मघ्नी ज्वर नाशिनी ।

ततः स्वल्पगुणा वल्या वाजिनां सातु पूजिता॥ भा० प्र० हरी० वर्गः॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-मेथिका, मेथिनी, मेथी। हिं०-मेथी। बं०, गु०, म०-मेथी। क०-मेंते। तै०-मेतुल। ता०-वेनड्यम्। फा०-शमलीत। अ०-हुल्वह। इं-फेनुग्रीक Fenugreek. लै०—फ्रीगोनेलाफकनुम अर्थक्स Frigonella Facvnm arthex.

गुण—मेथी रूक्ष, मूत्र तथा वायु का स्तम्भन करती है और घोड़ों के लिये विशेषलाभकारक है।

परिचय—यह दो प्रकार की होती है १—मेथी, २—वनमेथी। इसके पत्ते गोलाई लिये लम्वे होते हैं। पत्तों की जड़ से पीले फूल निकलते हैं वहीं लम्बी-लम्बी फलियां निकलती हैं, सूखने पर इनमें पीले रंग के बीज पाये जाते हैं। बीज मूंग के बराबर होते हैं। इसके पत्तों का शाक खाया जाता है तथा अन्य खाद्य पदार्थ भी बनाये जाते हैं। इनके बीजों का लड्डू तथा छौंक लगाने में प्रयोग होता है।

शाककाल—शरद्–हेमन्त ऋतु। प्रतिनिधि—अलसी।

पुष्पकाल—हेमन्तऋतु का अन्त। मारक—घी

फलपाककाल—शिशिर–वसन्तऋतु।

उपयोगी अंग—पत्र–बीज।

वक्तव्य—मेथी के बीज व्रणशोथ भेदक, विरेचक, कास तथा शोथ नाशक होते हैं। मेथी का क्वाथ मूत्रल, आर्तवदोषहर, सन्धिवात नाशक एवं क्षुधावर्धक होता है।

अथ फलशाकम्

मधुशिग्रुः [सहजन का शाक]

पावकपुष्टिकरः कटुतीक्ष्णः शोथहरोऽथ सरो मधुशिग्रुः॥ ३३॥

यथाह सुश्रुतः—

कटुः सक्षारमधुरः शिग्रुस्तिक्तोऽथ पिच्छिलः।
मधुशिग्रुः सरस्तिक्तः शोफघ्नो दीपनः कटुः॥ सु०सू० ४६॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-शोभाञ्जनः, शिग्रुः, तीक्ष्णगन्धकः, अक्षीवः मोचकः। हिं०-सहिजन। बं०-सजिना। गु०-सरगवो। क०-कम्पनेयनुगी। तै०-मुलङ्गा। ता०-मोरङ्ग। इं०-हार्सरेडिशट्री—Horseredishtree. लै०-हाइपरेन्थ्रा मोरिङ्गा Hyperanthera moringa.

गुण—सहिजन अग्निवर्धक, पाक में कटु, चरपरा, शोथ नाशक तथा विरेचक है।

परिचय—पुष्प भेद से सहिजन तीन प्रकार का है। १—सफेद। २—नीला या काला। ३—लाल, इसी को मधुशिग्रु भी कहते हैं। इनमें सफेद अथवा लाल फूल का सहजन सुलभ होता है, नीले फूल का सहिजन बहुत कम प्राप्त होता है। इसके पत्र छोटे-छोटे होते हैं, काण्डे सीधे, पर्याप्त लम्बे होते। इसके पत्तों तथा फलियों का शाकार्थ प्रयोग होता है। फलियां धारीदार लम्बी होती हैं।

पुष्पकाल—ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ।

फलपाककाल—शरद्-हेमन्त ऋतु।

उपयोगी अङ्ग—छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज।

वक्तव्य—सहिजन के बीजों को श्वेत=सफेद मरिच भी कहा जाता है। इसके फूल तथा पत्तियों के क्वाथ से शोथ का शमन होता है। यह उत्तम वातनाशक है। इसके सेवन से पेट के क्रिमि मर जाते हैं। सहिजन के पत्तों के रस में काली मिर्च को पीस कर मिरगी आने के पूर्व यदि रोगी की आंखों में लगा दिया जाता है तो रोग का संक्रमण नहीं होता। इसकी छाल के स्वरस का नस्य शिरःशूल को शान्त करता है॥ ३३॥

शतपुष्पा (सौंफ)

गुदकीलहरा त्रिदोषजिन्मतिशुच्छोधयितुं विचक्षणा।
अतिसारहरारुचिप्रदा शतपुष्पा ज्वरिणां प्रशस्यते॥३४॥

भाषान्तरों में नाम—सं०शतपुष्पा, शताह्वा, मधुरा, कारवी, मिसिः। हिं०-सौंफ। बं०-शलूफा। म०-वाट्ठन्तशोप। गु०-सुवादाना। क०-सज्ज-सीणे। ते०-सदाया। फा०-शुत। अ०-वजरुल सीव्यत। इं०-Dill sied. लै०-फेनीक्युलम बलोरी Feniculam Bulgeri.

गुण—सौंफ, बवासीर, त्रिदोष तथा अतिसार नाशक है, बुद्धिवर्धक एवं रुचिकारक है साथ ही ज्वर रोगियों के लिये लाभदायक है।

परिचय—सौंफ के क्षुप सोया के आकार के ४-५ फुट ऊँचे होते हैं। इसका फूल छाता जैसा दिखता है इसी में अनेक फूल लगते हैं। सौंफ के क्षुप के प्रत्येक अंग से सौंफ की सी गन्ध आती है। पत्ते छोटे-छोटे होते हैं, सौंफ के बीज हरे रंग के होते हैं।

पुष्पकाल—शीतकाल।

फलपाककाल—शिशिर-वसन्तऋतु।

उपयोगी अङ्ग—पत्र, पुष्प, बीज।

वक्तव्य—सौंफ प्रजास्थापन- शूल प्रशमन कारक, कफनाशक, गर्भाशय-शोधक, अग्निवर्धक तथा मुख दुर्गन्धिनाशक होता है॥ ३४॥

—:o:—

अथ कन्दशाकम्

सूरणशाकम् (जिमीकन्द)

रुचिकृत्कफनुद्विशदश्च लघुर्जठरस्थकृशानुकृशत्वहरः।
अतिपथ्यतमोगुदकीलवतामिति कन्दगुणानवदन्मुनयः॥३५॥

यथाह वाग्भटः—

दीपनः सूरणो रुच्यः कफघ्नोविशदो लघुः।
विशेषादर्शसां पथ्यः ... ... ॥ अ. हृ. सू. ६॥

यथाह सुश्रुतः—

... ... सूरणो गुदकीलहा ॥ सु. सू. अ. ४६ ॥

तत्र कन्दानां सामान्यगुणाः—

रक्तपित्तहराण्याहुः शीतानि मधुराणि च ।

गुरूणि बहुशुक्राणि स्तन्यवृद्धिकराणि च ॥ सु. सू. ४६ ॥

भाषान्तरों में नामः—सं०-सूरणः, कन्दः, ओलः, कण्डूलः, अर्शोघ्नः। हि०-सूरण, जिमिकन्द। बं०-ओल। म०-गोडा सूरण। गु०-सूरण। तै०-दोलकन्दा। फा०-ओला। लै०एमोर्फोपालस पैनिक्यूलेटस Amorpho Pallus peniculatus.

गुण—सूरण का शाक, रुचिकारक, कफनाशक, आर्द्रता (गीलापन) का विनाशक तथा व्रणरोपक, हलका, मन्दाग्निनाशक और अर्श बवासीर के रोगियों के लिये लाभप्रद होता है। सामान्यतया अन्य कन्दों के गुण भी इसी के बराबर होते हैं, ऐसा ऋषियों का मत है।

परिचय—सूरण एक कन्द शाक है। यह घरेलू और जंगली भेद से दो प्रकार का होता है। यह अरुई घुइयां = पिण्डालू वर्ग का कन्द है। इस कन्द का शाक दिवाली के अवसर पर खाया जाता है। यह देशाचार है। इसके बड़े-बड़े कन्द मिट्टी के भीतर होते हैं, इन कन्दों के ऊपर छोटी-छोटी गाठें सी लगी रहती हैं। इसका शाक बड़े चाव से बनाया एवं खाया जाता है यदि इसके निर्माण में सावधानी का प्रयोग न किया गया तो यह बड़ा कष्टप्रद भी होता है।

काल—शरद् ऋतु।

उपयोगी अङ्ग—कन्द-उपकन्द।

मारक द्रव्य—इमली, नमक, फिटकिरी।

वक्तव्य—"सर्वेषां कन्दशाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते" के अनुसार इस सर्वश्रेष्ठ कन्द का वर्णन कर ग्रन्थकार ने सामान्य कन्दों के गुणों को कह डाला॥२५॥

इति शाकवर्गः समाप्तः

—:o:—

अथ धान्यवर्गः

षष्टिकधान्यम् (सांठीधान्य)

स्थिरहिममधुरो विड्बंधकृल्लघ्वरूक्षो-
जयति सकलदोषान् षष्टिको व्रीहिराजः ॥

यथाह चरकः—

शीतः स्निग्धोऽगुरुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरात्मकः ।
षष्टिकः प्रवरो गौरः कृष्णगौरस्ततोऽनु च ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

स्निग्धो ग्राही लघुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरो हिमः ।
षष्टिको व्रीहिषु श्रेष्ठो गौरश्चासितगौरतः ॥अ. हृ. ६॥

साठीधान्य के नाम—षष्टिकः, शतपुष्पः, प्रमोदकः, मुकुन्दकः, महाषष्टिकः, इनका सामूहिक नाम 'व्रीहि' है ।

गुण—साठी चावल शरीर को दृढ़ करनेवाले, शीतल, मधुर, लघु, रूक्ष तथा ग्राहक (मल को रोकने वाले) होते हैं और तीनों दोषों का शमन करते हैं ।

परिचय—जो धान काल के भीतर ही पक जाते हैं उनको साठी धान्य कहते हैं । ये धान्य करीब दो मास में पक जाते हैं अतएव इनको साठी कहा जाता है ।

काल निर्णय—'व्रीहयः शारदाः, षष्टिकादयश्च ग्रैष्माः, शालिर्हैमन्तिकं धान्यम् इति व्यवस्थेति भिषजः, ततश्चात्र व्रीहिशब्दो धान्यसामान्यवाची, इसके अनुसार साठी धान्य का काल वसन्त ऋतु का अन्त माना गया है ।

उपयोगी अंग—साठी चावल ।

मुद्गम् (मूंग)

द्विदलवरमपीषद् वातलं मुद्गमाहुः ॥

यथाह चरकः—

कषायमधुरो रूक्षः शीतः पाके कटुर्लघुः ।
विशदः श्लेष्मपितघ्नो मुद्गः सूप्योत्तमो मतः ॥ च. सू. २७ ॥

भाषान्तरों में नामः—सं०,मुद्गः । हिं०-मूंग । बं०-मुग । म०-मूग । गु०-मग । क०-हेसरु । तै०-पेसलु । फा०-वनोमाष । अ०-माष । इं०-ग्रीन ग्रेन Creen grain. लै०-फेसि ओलस मूंगो Phaseonlus mongo.

गुण—मूंग की दाल सभी दालों में श्रेष्ठ है किन्तु थोड़ी मात्रा में वातकारक है ।

परिचय—मूंग की दाल को स्वस्थ तथा अस्वस्थ सभी पहचानते हैं । इसकी छोटी-छोटी लतायें होती हैं । इसके फूल सफेदी लिये पीले होते हैं । इन्हीं में गोल लम्बी सेम लगती है, उसी के भीतर हरे पकने पर भी हरे दाने होते हैं ।

पुष्पकाल—वर्षाऋतु का अन्त । प्रतिनिधि—मोठ ।
फलपाककाल—हेमन्त ऋतु का प्रारम्भ । मारक—खटाई ।
उपयोगी अंग—मूंग की दाल या मूंग ।

वक्तव्य—यहाँ से शिम्बी धान्य का प्रकरण प्रारम्भ होता है, शिम्बी धान्य उस धान्य को कहते हैं जो सेम की आकृति का हो । यह आकृति गण है । शिम्बी धान्य के सामान्य गुण—

वैदला मधुरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः ।
वातलाः कफपित्तघ्नबद्धमूत्रमला हिमाः ॥
ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मानकारिणः ॥

कलायः (मटर)

प्रबलयति नितान्तं भीमतातं कलायः ॥ ३६ ॥

यथाह चरकः—

... ... कलायो वातलः परम् । च. सू. २७ ॥
... ... कलायस्त्वति वातलः ॥ अ. हृ. ६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कलायः, वर्तुलः, सतीनः, हरेणुकः। हिं०-मटर। बं०-बांटुलामटर। म०-वाटाणें। गु०-मटाणा। क०-बट्टकडलें। तै०-पेद्दईव। फा०-कसंग। अ०-खलज। इं०-फील्ड पी Field pea. लै०-पाइसम साइटीवम pisum sativum.

गुण—मटर का प्रधान गुण है–वातदोष की वृद्धि, यही अन्य संहिताओं में भी वर्णित है।

परिचय—मटर प्रसिद्ध शिम्बी शाक है। यह लता वर्गीय क्षुप है। इसके पत्र गोलाई युक्त लम्बे, फूल नीलिमायुक्त सफेद, फल हरे किन्तु सूखने पर सफेद गोल होते हैं। कच्चे फलों का शाक और सूखे फलों की दाल बनाते हैं।

पुष्पकाल—हेमन्त ऋतु।

फलकाल—हेमन्त–शिशिर ऋतु।

फलपाक काल—शिशिर ऋतु का अन्त। मारक—मधु।

उपयोगी अंग—पत्र, शिम्बी, फल ॥ ३६ ॥

चणकः (चना)

रूक्षः क्षिणोति चलकृच्चणकोऽम्लपित्तम्।

यथाह चरकः—

चणकाश्च मसूराश्च खण्डिकाः सहरेणवः।
लघवः शीतमधुराः सकषाया विरूक्षणाः ॥ च. सू. २७ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०–चणकः, हरिमन्थः, सकलप्रियः। हिं०–चना, रहिला। बं०–छोला। गु०–चणा। म०–चणे। क०–कडले। तै०–चनगालु। इं०–ग्राम Gram. लै०–सिसेरएरी एटिनम् Cicerarietinum

गुण—चना, रूखा, वातकारक तथा अम्लपित्त रोग नाशक है।

परिचय—चना गरीबों से लेकर अमीरों तक का प्रिय खाद्य है। जितने व्यञ्जन चना के बनते हैं उतने अन्य किसी अन्न के नहीं। षड् विध भोजन

इसके बनाये जाते हैं। इसके कोमल पत्ते कच्चे भी खाये जाते हैं। इनमें कुछ खट्टापन रहता है। वर्ण एवं आकार भेद से यह दो प्रकार का होता है। १—छोटा, २—बड़ा तथा पीला, सफेद। नाम भेद—चना, काबुली चना।

पुष्पकाल—हेमन्त ऋतु।

फलकाल—हेमन्त-शिशिर ऋतु।

फलपाककाल—वसन्त ऋतु।

उपयोगी अंग—नवीन पत्र, हरे तथा सूखे फल।

मारक—लवण।

आढकी (अरहर)

वातप्रकोपनकरी तुवरी तु किञ्चित्।
पित्तं कफं हरति सैव घृतेन युक्ता,
भुक्ता समीरमपि संहरते सुखेन ॥३७॥

यथाह चरकः—

आढकी कफपित्तघ्नी वातला कफवातनुत् ॥ च. सू. २७ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-आढकी, तुवरी, शणपुष्पिका। हिं०-अरहर। बं०-अडहर। पं०-तोर। म०-तुरी। क०-तोवरी। तै०-कादुलु। फा०-शाखल। अ०-शाखुल। इं०-पीजन पी pigeo peonn. लै०-केजेनस इण्डिकस Cajanus indicus.

गुण—अरहर की दाल, वात प्रकोपक होती है, यदि इसमें घी डालकर सेवन किया जाय तो यह वात, पित्त, कफ तीनों का शमन करती है।

परिचय—'शणपुष्पिका' नाम से इसका फूल सम्बन्धी परिचय प्राप्त होता है। वैसे इसकी भी अन्य अन्नों के समान खेती होती है। अषाढ़ में इसको बोया जाता है और शरद् ऋतु के अन्त में काट लिया जाता है।

पुष्पकाल–वर्षा ऋतु का अन्त। प्रतिनिधि–मसूर।
फलपाककाल–शरद् ऋतु का अन्त। मारक–खटाई, घी।
उपयोगी अंग–पत्र, फल ॥ ३७ ॥

माषः (उड़द)

माषः स्निग्धो मारुतघ्नो गुरूष्णो
वर्चः पित्तश्लेष्मकृत्तेजहेतुः।
शुक्राधिक्याद् द्रावकर्ता सरः स्यात्।

यथाह चरकः—

वृष्यः परं वातहरः स्निग्धोष्णो मधुरो गुरुः।
बल्यो बहुमलः पुंस्त्वं माषं शीघ्रं ददाति च ॥ च.सू.२७ ॥

यथाह वाग्भटः—

माषः स्निग्धो बलश्लेष्म मलपित्तकरः सरः।
गुरूष्णोऽनिलहास्वादुः शुक्रवृद्धिविरेककृत् ॥ अ० हृ० ६ ॥

भाषान्तरों में नामः—सं०–माष। हिं०–उड़द, उरद। बं०–माष। गु०–उड़द। म०–उड़िद। क०–उद्दू। तै०–मनिउलु। फा०–मापेसव्ज। अ०–माषा। इं०–किडनी वीन kidney been. लै०-फेशिओलस रेडिएटस pheseolus raiatus.

गुण—माष स्निग्ध, वातनाशक, देर से पचनेवाले, उष्ण, मलवर्द्धक, कफ, पित्तकारक, कान्ति उत्पादक, शुक्र को अधिक बढ़ाने के कारण शुक्र का स्रावकर्ता तथा मलमूत्रादि का अनुलोमकर्ता भी है।

परिचय—इसकी खेती प्रायः सर्वत्र होती है। पञ्जाब प्रान्त तथा पर्वतीय प्रदेशों का माष सर्वगुण सम्पन्न होता है। परिचय की दृष्टि से यह मूंग के सदृश ही होता है। केवल मूंग हरा माष काला मुख में सफेद तथा आकृति में कुछ बड़ा होता है। माष हरे रंग का भी देखा जाता है, किन्तु समतलीय प्रदेशों में अन्यत्र

नहीं। इसी के वर्ग का एक और अन्न है, जिसको पर्वतीय (कूर्माचल) प्रदेश में भट या भटमास या भटवांस कहते हैं। यह आकृति में चपटा, रंगभेद से काला तथा सफेदी लिये हरा होता है, जैसे समतल प्रदेशों में चना भूंजकर खाया जाता है, उसी प्रकार पर्वतीय प्रदेशों में इसको भी भूंजकर खाते हैं तथा भटोंको भिगोकर पीसकर इनकी खीर बनाई जाती है, यह खीर दूध की खीर से भी अधिक स्वादु होती है।

पुष्पकाल—वर्षाऋतु का अन्त। मारक—लालमिर्च, अदरख, हींग।
फलपाककाल—हेमन्तऋतुका प्रारंभ। उपयोगी अङ्ग—उड़द की दाल या-
प्रतिनिधि—लोबिया। उड़द = माष।

कपिकच्छूः (किवांच)

काकाण्डोलान्यात्मगुप्तापि तद्वत् ॥ ३८ ॥

यथाह चरकः—

काकाण्डोलाऽऽत्मगुप्तानां माषवत् फलमादिशेत् ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

माषैः समानं फलमात्मगुप्त—
मुक्तं च काकाण्डफलं तथैव ॥ सु० सू० ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-कपिकच्छू, आत्मगुप्ता, वृष्या, मर्कटी, अजरा, कण्डुरा, व्यङ्गा, दुःस्पर्शा, प्रावृषायणी, लांगली, शूकशिम्बी। हिं०-किवाच। कु०-कौंच, कौंछ। बं०-आलकुशी। गु०-कोचा। क०-नुसुगुन्नी। म०-कुहली चे बीज। तै०-पिप्ली अडूगू। ता०-पुनाइक। इं०-काउ हेजप्लाण्ट Cawhedge plant.

गुण—माष के समान ही किवाच तथा कोलशिम्बी के भी गुण हैं।

परिचय—किवाच की लतायें वनों में स्वयं उत्पन्न होती हैं, इनमें वर्षाऋतु में गाढ़े-नीले रंग के फूल तथा सेम के आकार की फलियां होती हैं। ज्यों-

ज्यों फलियां परिपाक को प्राप्त होती जाती हैं, त्यों-त्यों इनमें रोमराजि उत्पन्न होती जाती है। इसका कपिकच्छू नाम सार्थक ही है, क्योंकि इसका कष्ट बन्दरों को ही अधिक भोगना पड़ता है। मानव तो सावधानी से वर्षा से रोयें धुल जानेपर इसका संग्रह कर लेता है। आकार भेद से यह छोटी-बड़ी दो प्रकार की होती हैं। छोटी को 'किंवाच' और बड़ी को 'कोलशिम्बी' कहते हैं। कूर्मांचल प्रदेशमें इसको 'बलदाङ्क' अथवा 'बलदआंख' कहते हैं। इसको घिसकर कागज आदि को चिपकाया जाता है, इतनी अधिक पिच्छिलता होती है इस कोलशिम्बी में। सेम के भीतर के बीज का छिलका चितकबरा, भूरा या काला होता है। फोड़नेपर भीतर की गिरी सफेद होती है। इसकी खीर बनायी जाती है, जो परम वृष्य है। इसके रोयें अत्यधिक खुजली तथा दाहकारक होते हैं।

पुष्पकाल—वर्षाऋतु का अन्त। प्रतिनिधि—श्वेतगुञ्जा (उटंगन)।
फलपाककाल—शरदृऋतुका अन्त। मारक—गुलरोगन।
उपयोगी अंग—परिपक्व बीज ॥ ३८ ॥

राजमाषः (सेम)

रूक्षोगुरुर्बहुशकृच्चलकृच्च शिम्बी,
धान्याधमस्त्वमसि नागम एष मिथ्या।
ते राजमाष ! ननु राजपदं प्रदत्तं
माषं, विहाय विधिना तदद्दष्टमेव ॥ ३९ ॥

यथाह चरकः—

राजमाषः सरो रुच्यः कफशुक्राम्लपित्तनुत्।
तत्स्वादुर्वातुलो रूक्षः कषायो विषदो गुरुः ॥ च० सू० २७ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-राजमाषः, महामाषः, चपलः, धवलः। हिं-बड़ी सेम, लोबिया। बं०-बरबटी। गु०-चोला। म०-चँवला। क०-बरवटा तै०-दन्तपेसलु। फा०-कजराजु, लोबिया। अ०-फिरिका। इं०-चायनीज

डोलिकस Chinese Dolicus. लै०-डोलिकोजसिनेंसिस Dolichos Sinevsis.

गुण—राजमाष रूक्ष, देर में पचनेवाला, अधिक पुरीष पैदा करने वाला, वायुवर्धक तथा सभी शिम्बी धान्यों में अधम होता है। शास्त्रों में जो यह तेरा वर्णन मिलता है वह झूठ नहीं। कविका कथन है कि—हे राजमाष! माष (उड़द) को छोड़कर तुझे जो यह (राजमाष) की उपाधि मिल गयी यह केवल तेरा सौभाग्य ही है।

परिचय—राजमाष शिम्बी वर्ग का धान्य है। इसकी सेम बड़ी होती है। वर्ण भेद से यह सफेद, काला, लाल तीन प्रकार का होता है। शेष प्रसिद्ध ही है।

पुष्पकाल—वर्षाऋतु।
फलपाककाल—शरद्-हेमन्त ऋतु।
उपयोगी अंग—फल, पत्र ॥ ३६ ॥

गोधूमः (गेहूं)

सन्धानकृत्समधुरो गुरुशीतवीर्यो
वृष्यः स्थिरत्वजननोजनजीवनश्च
स्निग्धः सरः पवनपित्तजये प्रयोज्यः
कस्य प्रियो न सुमनः सुमनःस्थलेऽपि ॥४०॥

यथाह चरकः—

सन्धानकृद्वात हरो गोधूमः स्वादुशीतलः।
जीवनो बृंहणो वृष्यः स्निग्धः स्थैर्यकरो गुरुः ॥ च० सू० २७ ॥

भाषान्तरों में नामः—सं०-गोधूमः, सुमनः, मधूली, नन्दीमुखः। हिं०-गेहूँ। वं०-गम। म०-गेहुँ। गु०-घऊँ। क०-गोधि। फा०-गन्दुम। अ०-हिन्तः। इं०-व्हीट Wheat, लै०-ट्रिटिकम् सेटाइवा Triticum Sativa,

गुण-गेहूँ टूटी हुई हड्डी आदि को जोड़नेवाला, मधुर, पाक में भारी, शीतवीर्य, धातुवर्धक, स्थिरताकारक, प्राणियों का जीवनाधार, स्निग्ध, अनुलोमन कारक, वात, पित्त शामक होता है। इतने गुणों वाला यह गेहूँ देवलोक में भी किसको प्रिय नहीं है। अर्थात् सबको प्रिय है।

परिचय-गेहूँ की गणना शूक धान्यों में की जाती है, इसकी अनेक जातियां हैं। जातिभेद तथा देश काल के प्रभाव के कारण उनके गुण धर्मों में भी कुछ अनन्तर आ जाता है जो स्वाभाविक है। गेहूँ कार्तिक-अगहन में बोया जाता है और वसन्तऋतु के आस-पास काटा जाता है। इसका भूसा पशुओं के लिये फल=दाने मानवों के लिये उपयोग में लाये जाते हैं।

पुष्पकाल—हेमन्त-शिशिर ऋतु। प्रतिनिधि—जौ।

फलपाककाल—वसन्त-ग्रीष्मऋतु। मारक—सिरका, कलौंजी।

उपयोगीअंग—बीज।

गेहूँ की प्राचीन जातियां—महागोधूम, गोधूम या नन्दीमुख तथा मधूली ॥ ४० ॥

तिलः [तिल]

उष्णस्त्वच्यः केश्यो मतिकफशुक्राग्निकृत् कटुः पाके।
बल्योऽल्पमूत्रकारी शीतस्पर्शो गुरुस्तिलो ज्ञेयः ॥४१॥

यथाह चरकः—

स्निग्धोष्णो मधुरस्तिक्तः कषायः कटुकस्तिलः।
त्वच्यः केश्यश्च बल्यश्च वातघ्नः कफपित्तहृत् ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह सुश्रुतः—

तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथाऽन्ये॥सु०सू०४६।

भाषान्तरों में नामः-सं०-तिलः। हिं०-तिल, तिल्ली। कु०-तील। ब०-तिल। गु०-तल। म०-तिल। क०-एल्लु। तै०-नुवुलु। ता०-वल्लेनय। फा०-कुञ्जद। अ०-सिमसिम। इं०-सिसेमम निगर सीड्स Sisamum Niger Seeds, लै०-सिसेमम इण्डिकम् Sisamum indicum,

गुण—तिल गरम, त्वचा के हितकारक (तेलमालिश अथवा खाने के रूप में), केशहितकारक (तैल मर्दन के रूप में), बुद्धि वर्धक, कफकारक, शुक्रप्रद, जाठराग्निदीपक, पाकमें कटु, चरपरा, बलदायक, अल्पमूत्रकर्ता, स्पर्श में शीतल तथा भारी होता है।

परिचय—यह शिम्बीधान्य वर्ग का अन्न है। इसके पुष्प श्वेताभ नीले होते हैं। इसकी सेम के बाहरी ओर चार धारियाँ-सी होती हैं जो पकने पर स्वयं फट जाती हैं, इसकी खेती रूक्षस्थानों (बलुही भूमि) पर अच्छी होती है। वर्ण भेद से ये तीन प्रकार के होते हैं, १—काले, २—सफेद, ३—लाल। इसी प्रकार के एक जंगली तिल भी होते हैं, जिनको अल्पतिल कहा जाता है। तिल वर्षा ऋतु के आरम्भ में बोये जाते हैं और शरद् ऋतु के अन्त में काटे जाते हैं।

पुष्पकाल—वर्षा ऋतु का अन्त।
फलपाककाल—शरद् ऋतु का अन्त।
मारक—भूनकर सेवन करना।
उपयोगी अंग—पत्र, पुष्प, फल।
प्रतिनिधि—काले के सफेद और सफेद के काले।

वक्तव्य—तिल का एक गुण है "अल्पमूत्रकारी", जाड़ों में स्वभावतः शीतता के कारण मूत्र की अधिकता होते देखी जाती है, अतएव तिलों का (लड्डू, तिलकुट आदि) विभिन्न प्रकार से सेवन लोकप्रसिद्ध, शास्त्र सम्मत तथा धर्मशास्त्र के द्वारा अनुमत है। मकरसंक्रान्ति तथा संकष्टहर गणेश चतुर्थी के पर्वों में तिलों को प्रसाद के रूप में खाने का विधान प्रधानतया स्वास्थ्य की दृष्टि से ही किया गया है। माघ कृष्णपक्ष की एकादशी का नाम षट् तिला एकादशी है। इसमें धार्मिक दृष्टिकोण से तिलों का माहात्म्य देखें—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक् तिलदाता च षट्तिला पापनाशिका॥

अर्थात् तिलमय दिनचर्या को ही धार्मिक कृत्य मानने का उपदेश धर्म-

शास्त्र ने दिया है। धान्यों के दो भेद माने गये हैं, १–शूकधान्य, २–शिम्बीधान्य। "माषादयः शमीधान्ये, शूकधान्ये यवादयः" इत्यमरः ॥ ४१ ॥

इति धान्यवर्गः समाप्तः।

अथ-मांसवर्गः

माहिषम् [भैंसा का मांस]

निद्रादार्ढ्यबृहत्वकृद् गुरुतरश्चोष्णो लुलायः स्मृतः।

यथाह चरकः–

स्निग्धोष्णं मधुरं वृष्यं माहिषं गुरु तर्पणम्।
दार्ढ्यं बृहत्वमुत्साहं स्वप्नं च जनयत्यपि ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः–

उष्णो गरीयान्महिषः स्वप्नदार्ढ्यबृहत्वकृत्। वाग्भट ६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०–मांसं, पिशितं, क्रव्यं, आमिषं, पललं, पलम्। हिं०–मांस। फा०–गोश्त। इं०–मीट Meat.। ये नाम सभी प्रकार के मांसों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

गुण—महिष का मांस-निद्राप्रद, शरीर को दृढ़ करनेवाला तथा बढ़ानेवाला, देरमें पचने वाला एवं गरम होता है।

प्रतिनिधि–शूकर मांस। मारक–दालचीनी।

शूकरमांसम् [शूकर का मांस]

कोलस्तद्वदरोचकः श्रमहरः शुक्रं बलं वर्द्धयेत्।

यथाह चरकः–

वराहपिशितं बल्यं रोचनं स्वेदनं गुरु। ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः–

तद्वद्वराहश्च महारुचिशुक्रवलप्रदः ॥ अ. हृ. ६ ॥

तद्वदिति–माहिषमांसवद्गुणाः ।

गुण—सूअर का मांस-यह भी महिष मांस के समान गुणों वाला होता है तथा अरुचिकारक, थकावट को दूर करनेवाला, शुक्र एवं वलवर्धक होता है ।

प्रतिनिधि–महिष मांस । मारक–मद्य, चीनी ।

तित्तिरमांसम् [तीतर का मांस]

मेधाशुक्रवलाग्निकृद्वहुमरुद्दोपत्रयघ्नः परम् ।
वर्ण्यो ग्राह्यपि तित्तिरो हिततरः... ...।

यथाह चरकः–

तित्तिरिः सञ्जयेच्छीघ्रं त्रीन्दोषाननिलोल्वणान् ॥च. सू. २७॥

यथाह वाग्भटः–

तित्तिरिस्तेष्वपि वरो मेधाग्निवलशुक्रकृत् ॥ वाग्भट सू. ६ ॥

गुण–तीतर का मांस- बुद्धि, शुक्र तथा अग्नि को वढ़ानेवाला, वात प्रधान, तीनों दोषों का शमन कर्ता, सौन्दर्यवर्धक, मलावरोधक एवं पथ्य होता है ।

प्रतिनिधि–वटेर का मांस । मारक–खटाई ।

मत्स्यमांसम् [मछली का मांस]

··· मत्स्याः परं श्लेष्मलाः ॥ ४२ ॥

यथाह वाग्भटः–

मत्स्याः परं कफकरा ··· ··। वा० सू० ६ ॥

यथाह चरकः–

मत्स्याः स्निग्धाश्च वृष्याश्च वहुदोषाः प्रकीर्तिताः । च० सू० २७ ॥

गुण–मछली का मांस-अत्यधिक कफ कारक होता है ।

वक्तव्य–आचार्य भावमिश्र ने मछलियों की विभिन्न जातियों का वर्णन अपने ग्रन्थ में निम्न प्रकार से किया है–रोहितः, शिलीन्ध्रः, भाङ्गुरः, मोचिका,

पाठीनः, शृङ्गी, इल्लीसः, शष्कुली, गर्गरः, कविका, वर्मि, दण्ड, एरङ्गी, महाशफरी, गरघ्नी, मदगुरः, सपादमत्स्यः, प्रोष्ठी। इनके अतिरिक्त भी मछलियों की अनेक जातियां हैं जिनको मछुए भली भांति जानते हैं।

भिन्न-भिन्न ऋतुओं में भिन्न-भिन्न स्थान के मत्स्यमांस भक्षण का विधान—वसन्तऋतु में नदी की, ग्रीष्मऋतु में चौञ्ज की (चौञ्ज=पहाड़ी नौलों का नाम है), वर्षा ऋतु में तालाव की, शरदृऋतु में झरना की, हेमन्तऋतु में कुआं की और शिशिर ऋतु में झील की मछलियों का मांस खाना चाहिये ॥ ४२ ॥

लावकमांसम् [बटेर का मांस]

सर्वदोषशमनस्तु लावकः पावकद्रढिमकृद् वलप्रदः ॥

यथाह चरकः—

लावाः कषायमधुरा लघवोऽग्निविवर्धनाः ॥ च० सू० २७ ॥

गुण—लवा पक्षी का मांस—तीनों दोषों को शान्त करने वाला, जठराग्निवर्धक तथा बलवर्धक होता है।

प्रतिनिधि—तीतर का मांस। मारक—सिरका, घी।

वक्तव्य—लवा पक्षी चार प्रकार का होता है, उसके क्रमशः भेद—१. पांसुल। २. गौरक। ३. पौण्ड्रक। ४. दर्भर।

चटकमांसम् [गौरैया का मांस]

स्निग्धमारुतहृतश्च शुक्रलाः
श्लेष्मलाश्च चटकाः प्रकीर्तिताः ॥ ४३ ॥

यथाह चरकः—

चटका मधुराः स्निग्धा बलशुक्रविवर्धनाः।
सन्निपातप्रशमनाः शमना मारुतस्य च ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

चटकाः श्लेष्मलाः स्निग्धावातघ्नाः श्लेष्मलाः परम् ॥ वा० सू० ६ ॥

गुण—गौरैया का मांस—स्निग्ध, वातनाशक, शुक्रवर्धक तथा कफकारक होता है।

वक्तव्य—ग्रन्थकार ने उपर्युक्त मांस वर्ग में १. जाङ्गल, २. आनूप भेद से प्रमुखमांसों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

जाङ्गल वर्ग में—विष्किर पक्षियों (चटक, त्तित्तिर, लाव पक्षियों) का वर्णन और आनूपवर्ग में कूलेचर पशुओं (भैंसा, सूअर) का तथा (जलचर) मछली का वर्णन कर अपनी प्रतिज्ञा (प्रसिद्ध वस्तुओं का वर्णन) का पालन किया है ॥४३॥

इति मांसवर्गः समाप्तः।

अथ-दुग्धवर्गः

गोदुग्धम् [गाय का दूध]

बलस्तन्यकृच्छ्वासकासाधिक्षुत्तृट्-
क्षतक्षीणपथ्यं मरुत्पित्तहारी।
पुराणज्वरे मूत्रकृच्छ्रेऽस्रपित्ते
पिबेद्गव्यदुग्धं सरं जीवनीयम् ॥ ४४ ॥

मदश्रमभ्रमापहं विशेषशुक्रवर्धनम्।
प्रसादपुष्टिदं पयः पिबन्ति पुण्यकारिणः ॥ ४५ ॥

यथाह चरकः—

स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्।
गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥ च० सू० २७॥

यथाह वाग्भटः—

स्वादुपाकरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम्।
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरुशीतलम्॥
प्रायः पयोऽत्र गव्यन्तु जीवनीयं रसायनम्॥ अ० हृ० सू० ६॥

दूध सामान्य का भाषान्तरों में नामः—सं०-दुग्धं, क्षीरं, पयः, स्तन्यम्। हिं०-दूध। बं०-दूध। क०-हालु। तै०-पालु। फा०-शीर। अ०-जुवन। ता०-पाल। इं०-मिल्क Milk. लै०-लकटस Lactus.

गायके दूधके नाम—सं०-गोदुग्ध। हिं०-गाय का दूध। इं०-काऊ-जमिल्क Cows Milk.

गुण—गाय का दूध बल एवं दुग्धवर्धक, श्वास, कास, मानसिक व्यथा, भूख तथा तृषा (प्यास) नाशक, राजयक्ष्मा से कृशमानवों का हितकारी, वात, पित्त नाशक होता है। जीर्णज्वर, मूत्रकृच्छ्र एवं रक्तपित्त के रोगियों के लिए पथ्य होता है। यह मलों का अनुलोमकारक तथा जीवनीयशक्ति को देता है। मद, थकावट और भ्रम को दूर करता है। विशेष रूप से वीर्य वर्धक, चित्त को प्रसन्न करनेवाला, शरीर का पुष्टिकारक यह गाय का दूध पुण्यात्माओं को ही सुलभ होता है।

प्रतिनिधि—बकरी का दूध। मारक—गुलकन्द।

वक्तव्य—सद्यः प्रसूता (प्रसव के ४० दिन पर्यन्त) का अथवा मृतवत्सा (जिसका बछड़ा मर गया हो उसका) का दूध त्रिदोष कारक होता है, अतः इसका सेवन नहीं करना चाहिये। वष्कयिणी (बारवरी) गाय का दूध त्रिदोष-नाशक, तृप्तिकारक तथा बलबर्धक होता है। जांगल, आनूप एवं पर्वतीय गायों का दूध उत्तरोत्तर गुरुपाकी होता है। ये नियम गाय, भैंस, बकरी, ऊंटिनी, हथिनी आदि सबके लिये समान रूपेण माने जाते हैं। इसका दैनिक जीवन में भोजन के पश्चात् सेवन का निर्देश शास्त्रों में मिलता है। क्योंकि दूध के सेवन से विदाहकारी अन्नपान जनित दोषों का शीघ्र शमन हो जाता है, अतः भोजन के अन्त में दूध का सेवन किया जाता है और करना भी चाहिये। इसी का समर्थन ब्रह्मपुराण में भी किया है, यथा—"कुर्यात् क्षीरान्तमाहारम्"॥४४-४५॥

आजदुग्धम् [बकरी का दूध]

श्वसनज्वरयक्ष्मरक्तपित्तातिसृतिघ्नं लघुदुग्धमाजमाहुः ॥

यथाह चरकः—

छागं कषायमधुरं शीतं ग्राहि पयो लघु।
रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम॥ च. सू. २७॥

यथाह वाग्भटः—

आजं शोष-ज्वर-श्वास-रक्तपित्तातिसारजित्॥ अ. हृ. सू. ६॥

नाम—छागं दुग्धम्, आजं दुग्धम्। हिं०—बकरी का दूध।

गुण—बकरी का दूध—श्वास, ज्वर, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, अतिसार नाशक तथा लघुपाकी होता है।

वक्तव्य—राजयक्ष्मा में तो इसके सर्वाङ्गीण प्रयोग का आदेश है, यथा—

छागमांसं पयश्छागं छागं क्षीरं च सर्पि च।
छागोपसेवा वसनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत्॥

माहिषदुग्धम् [भैंस का दूध]

प्रबलानलनष्टनिद्रपथ्यं रसयुक्तं गुरु माहिषं हिमं स्यात्॥ ४६॥

यथाह चरकः—

महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीतरं पयः।
स्नेहान्न्यूनमनिद्राय हितमत्यग्नये च तत्॥ च० सू० २७॥

यथाह वाग्भटः—

हितमत्यग्निनिद्रेभ्यो गरीयो माहिषं हिमम्॥ अ. हृ. सू. ६॥

नाम—सं०—माहिषं दुग्धम्। हिं०—भैंस का दूध।

गुण— भैंस का दूध—तीक्ष्ण जाठराग्निवालों तथा निद्रा नाशवालों के लिये हितकर और स्वादिष्ट एवं शीतल होता है।

प्रतिनिधि—गाय का दूध। मारक—चीनी॥ ४६॥

औष्ट्रदुग्धम् [ऊंटनी का दूध]

औष्ट्रं लघिष्ठं कृमिजुत्क्षयांर्शो-
वातश्लेष्मानाहशोफोदरेषु।

यथाह चरकः—

रूक्षोष्णं क्षीरमुष्ट्रीणामीषत्सलवणं लघु।
शस्तं वातकफानाहक्रिमिशोफोदरार्शसाम् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

ईषद्रूक्षोष्णलवणमौष्ट्रकं दीपनं लघु।
शस्तं वातकफानाहक्रिमिशोफोदरार्शसाम् ॥ अ. हृ. सू. ६ ॥

नाम—सं०-उष्ट्री दुग्धम्। हिं०-ऊंटनी का दूध।

गुण—ऊंटनी का दूध लघु होता है, यह कृमि, भूख, क्षय, बवासीर, वात, कफ, अफरा, शोथ तथा जलोदर रोगों में लाभ कारक होता है।

प्रतिनिधि—गाय का दूध। मारक—मिश्री।

वक्तव्य—ऊंटनी का दूध बड़ा स्वादिष्ट होता है, यदि तत्काल पी लिया जाय नहीं तो उसमें शीघ्र ही कीड़े पड़ जाते हैं।

वशापयः (हथिनीका दूध)

वशापयः स्थैर्यकृद् बाढरूक्षं
किंचिच्चेष्टं देहदार्ढ्यं करोति। ४७ ॥

यथाह चरकः—

हस्तिनीनां पयोबल्यं गुरुस्थैर्यकरं परम् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

हस्तिन्याः स्थैर्यकृद् ... ...। अ. हृ. सू. ६ ॥

नाम—सं०-हस्तिनी दुग्धम्, वशादुग्धम्। हिं०-हथिनी का दूध।

गुण—हथिनी का दूध देह को अत्यन्त मोटा करने वाला, कुछ रूखा तथा शरीर को दृढ़ करता है।

प्रतिनिधि—भैंस का दूध। मारक—मधु।

अविदुग्धम् (भेड़ी का दूध)

उष्णं हृद्यं त्वाविकं वातरुग्घ्नं
पित्तश्लेष्मश्वासहिक्काप्रदं स्यात् ।
स्रोतः स्रावि क्षीरमामं गुरु स्यात्
पथ्यापथ्यं गोऽविदुग्धं घृतं च ॥ ४८ ॥

यथाह चरकः—

हिक्काश्वासकरं तूष्णं पित्तश्लेष्मलमाविकम् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

... ... अहृद्यं तूष्णमाविकम् ॥ अ. हृ. सू. ६ ॥

नाम—सं०—आविकं दुग्धम् । हिं०—भेड़ी का दूध ।

गुण—भेड़ का दूध गरम, हृदय के लिये हितकर, वातरोग नाशक तथा पित्त, कफ, हिक्का श्वास को उत्पन्न करता है। भेड़ का कच्चा दूध स्रोतः स्राव कर्ता तथा देर में पचता है। गाय का दूध और घृत पथ्य, भेड़ का दूध और घृत अपथ्य होते हैं।

प्रतिनिधि—बकरी का दूध। **मारक**—मिश्री, मधु।

वक्तव्य—उक्तश्लोक के चतुर्थांश का भाव केवल यह है कि गाय के दूध तथा घी की अपेक्षा भेड़ का दूध, घी अपथ्य है। शेष विवेचन के लिये उसके गुणों पर ध्यान दें ॥ ४८ ॥

एकशफदुग्धम् [घोड़ी आदि का दूध]

अम्लरसं लवणं लघुशाखामारुतजिज्जडताकरमुष्णम् ।
ऐकशफम्, ... ।

यथाह चरकः—

वल्यं स्थैर्यकरं सर्वमुष्णं चैकशफं पयः ।
साम्लं सलवणं रूक्षं शाखावातहरं लघु ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

... ... उष्णं त्वैकशफं लघु।

शाखावातहरं साम्लं लवणं जडताकरम् ॥ अ. हृ. सू. ६ ॥

नाम—सं०—ऐकशफं दुग्धम्। हिं०—घोड़ी, गधी आदि (एक खुरवालों) के दूध का नाम।

गुण—घोड़ा आदि एक खुर वालों का दूध खट्टा, नमकीन, सुपाच्य, हाथ पैरों के वात का नाशक, जड़ताकारक तथा उष्णवीर्य होता है।

प्रतिनिधि—गधी का दूध। मारक—गुलकन्द।

नारीदुग्धम् [स्त्री का दूध]

...सुदृशां त्वभिघातासृक्चलपित्तगुदामयनुत्स्यात् ॥ ४९ ॥

यथाह चरकः—

जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषंपयः।
नावनं रक्तपित्ते च तर्पणं चाक्षिशूलिनाम् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

मानुषं वातपित्तासृगभिघाताक्षिरोगजित्।
तर्पणाश्च्योतनैर्नस्यः ... ... ॥ अ. हृ. सू. ६ ॥

नाम—सं०—स्त्रीदुग्धम्। हिं०—नारी का दूध।

गुण—नारी का दूध अभिघातज, रक्तज, वातज, पित्तज तथा बवासीर जन्य विकारों का शमन करता है।

दधि (दही)

अम्लपाककरमौष्ण्यभृद् गुरु ग्राह्यरोचकसमीरणापहम्।
रक्तपित्तबलशुक्रपावकस्थौल्यशोफकफदं दधि स्मृतम् ॥५०॥

यथाह चरकः—

रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्धनम्।
पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं माङ्गल्यं बृंहणं दधि ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

अम्लपाकरसं ग्राहि गुरूष्णं दधि वातजित् ।

मेदः शुक्रबलश्लेष्मपित्तरक्ताग्निशोफकृत् ॥ अ० हृ० अ० ६ ।

भाषान्तरों में नाम—सं०-दधि । हिं०-दही । कु०-दै । बं०, गु०-दही । क०-मोसरु । तै०-हयगु । फा०-दोग, शीर ए खुफता । अ०-सुगरात । इं०-कर्डलेडमिल्क Curdled milk. लै०-कर्डस् Curds.

गुण—दही अम्लपाककारी, उष्ण, गुरुपाकी, पुरीष (मल) को रोकने वाला, अरुचि तथा वातनाशक, रक्तपित्तकारक, बल, शुक्र एवं जठराग्निवर्धक, शोथ और कफकारक होता है ।

प्रतिनिधि—पनीर । मारक—नमक, सोंठ, पोदीना ।

वक्तव्य—यहाँ पर दही के सामान्य गुणों को वर्णन किया गया है । जिस प्रकार उत्पत्ति भेद से दूध के गुणों में परिवर्तन हो जाता है उसी प्रकार दही, मक्खन, घी आदि के गुणों में भी परिवर्तन होता है, इसके लिये अन्य निघण्टुओं को देखें । दधि सेवन के सम्बन्ध में कुछ निर्देशः—

न नक्तं दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम् ।

नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नामलकैर्विना ॥

और भी—

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्विगर्हितम् ॥ ५० ॥

तक्रम् (मठा)

तक्रतत्परतया सुधांधसः कुर्वते सुरभि संग्रहं सदा ।

यथाह चरकः—

स्नेहव्यापदि पाण्डुत्वे तक्रं दद्याद् गरेषु च ॥ च० सू० २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

तक्रं लघु कषायाम्लं दीपनं कफवातजित् ॥ अ० हृ० सू० ६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०–घोलं, मथितं, तक्रं, उदश्वित्, छच्छिका। हिं०–मठा, माठा, छाछ। कु०–छाँस। बं०–घोल। म०–ताक, तक्र। गु०–छाश। क०–मज्जिगे। तै०–मज्जिगे। फा०–मस्त। अ०–हमीज। इं०–बटरमिल्क Butter milk.

गुण—छाछ के गुणों से सुपरिचित अमृतपान करने वाले देवता भी कामधेनु को पालते हैं। अर्थात् इसके गुण त्रैलोक्यप्रसिद्ध हैं।

प्रतिनिधि—मस्तु = दही का पानी। मारक—सोंठ, जीरा, काला नमक।

वक्तव्य—मठा के गुणों से मुग्ध होकर अनेक मनीषियों ने इसका भिन्न-भिन्न प्रकार से गुणगान किया है, यथा—

कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेत्।
वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः॥
इन्द्रो दुर्बलतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः।
कुष्ठित्वञ्च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति॥

अर्थात् मठा उपर्युक्त सभी रोगों के शमन की क्षमता रखता है। एक और—

न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्नतक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः।
यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥

मस्तु [दही का पानी]

तत्समं सुलघु मस्तु शोधनं स्रोतसां चलमलानुलोमनम्॥५१॥

यथाह चरकः—

श्लेष्मानिलघ्नस्तु मण्डः स्रोतोविशोधनः। च. सू. २७॥

यथाह वाग्भटः—

तद्वन्मस्तु सरं स्रोतःशोधि विष्टम्भजिल्लघु॥ अ० हृ० सू०॥

भाषान्तरों में नाम—सं०–दधिमण्डं, मस्तु। हिं०–दही का पानी।

गुण—दही का पानी मठा से भी हलका, कान, आंख आदि स्रोतों का शोधनकर्ता, वायु तथा मल को अनुलोम करता है। शेष मठा के समान॥५१॥

नवनीतम् [मक्खन]

नवनीतमिदं नवमेवहितं हिमशुक्रबलानलकान्तिकरम् ।
ग्रहणात्मकमर्दितपित्तमरुद्गुदजक्षतजक्षयकासहरम् ॥५२॥
प्रक्कणद्वलयवल्गुहस्तया कान्तया दयितभाजनेऽर्पितम् ।
येन नूतनघृतं न भक्षितं पापमेव खलु तेन भक्षितम् ॥५३॥

यथाह चरकः—

संग्राहि दीपनं हृद्यं नवनीतं नवोद्धृतम् ।
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नमर्दितारुचिनाशनम् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

नवनीतं नवं वृष्यं शीतं वर्णबलाग्निकृत् ।
संग्राहि वातपित्तासृक् क्षयार्शोर्दितकासजित् ॥
क्षीरोद्भवन्तु संग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगजित् ॥ अ. हृ. सू. ६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०-म्रक्षणं, सरजं, हैयङ्गवीनं, नवनीतकम् । हिं०-मक्खन, नैनू । कु०-नौणी । बं०-माखन । म०-लोणी । गु०-माखण । क०-वेण्णे । तै०-पेन्ना । फा०-मस्का । अ०-जुबद् । इं०-बटर Butter. लै०-बूटिरम् Butyrum.

गुण—ताजा मक्खन उत्तम तथा हितकर होता है। यह शीतल होता है और शुक्र, बल, अग्नि एवं कान्ति को उत्पन्न करता तथा बढ़ाता है। यह संग्राही होता है, अर्दित (मुख प्रदेश का लकवा), पित्त विकार, वायुविकार, बवासीर, व्रणजक्षय तथा खांसी का नाश करता है।

नवनीत का माहात्म्य--प्रेयसी के कंकणों की झनकार से शोभित हाथों से निकाला हुआ तथा सुन्दर पात्र में रख कर दिया हुआ नवनीत का जिसने सेवन नहीं किया, वह अभागा है अर्थात् वह पापों का ही भोग करता है।

प्रतिनिधि—घी । मारक—चीनी, नमक ।

वक्तव्य—दूध को जमाकर दही और दही को मथने से मठा तथा मक्खन की प्राप्ति होती है। एक दूसरा प्रकार—केवल दूध को मथकर भी मक्खन

निकाला जाता है। यह पहिले प्रकार के मक्खन से अधिक संग्राही तथा नेत्रों के लिए हितकर होता है ॥ ५३ ॥

घृतम् [घी]

आयुर्मतिस्मृतिधृतिद्युतिकारि बाल-
वृद्धस्वरार्थिषु हितं बलशुक्रदायि ।
पुष्ट्यग्निकृत्पवनपित्तहृदक्षिशस्तं
शीतज्वरापहमनन्तगुणं घृतं स्यात् ॥५४॥

यथाह चरकः—

सर्वस्नेहोत्तमं शीतं मधुरं रसपाकयोः ।
सहस्रवीर्यं विधिवद् घृतं कर्म सहस्रकृत् ॥ च. सू. २७ ॥

यथाह वाग्भटः—

स्नेहानामुत्तमं शीत वयसः स्थापनं परम् ।
सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत् ॥ अ. हृ. सू ६ ॥

भाषान्तरों में नाम—सं०—घृतं, आज्यं, हविः, सर्पिः ।हिं०—घी। कु०—ध्यू। बं०—घृत। गु०—घी। म०—तूप। तै०—नेई। क०—तुप्पा। फा०—रोगने जर्द। अ०—समन। इं०—क्लेरी फाइड बटर Clari fied Butter. लै०—ब्युटिरम डेप्युरेटम Butyrum depuratum.

गुण—घी आयु, बुद्धि, स्मृति, धारणा शक्ति तथा कान्ति कारक एवं वर्धक है। बालक, वृद्ध और उत्तम स्वर को चाहने वालों के लिए हितकारी, बल, शुक्र-वर्धक, वातपित्त नाशक, नेत्र तथा नेत्र रोगों में हितकारक, शीतज्वर नाशक है। अधिक क्या कहा जाय घी अत्यन्त गुणवान् द्रव्य है।

प्रतिनिधि—मक्खन। मारक—नमक, चीनी ॥ ५४ ॥

निवेदनम्

वाग्भटस्य मतमस्ति समस्तं सुश्रुतस्य चरकस्य च किञ्चित् ।
तद्वदत्रितनयस्य विचित्रा वाग्विलासरचना मम तावत् ॥५५॥

टीका—वैद्य लोलिम्बराज का कथन है कि इस वैद्यावतंस में सम्पूर्ण मत वाग्भट का है, कहीं पर चरक तथा सुश्रुत के मत का भी समावेश किया गया है, उसी प्रकार आत्रेय के मत का भी संग्रह इसमें किया गया है। मैंने तो केवल उन शास्त्रीय विचारों को अपनी शैली से पद्यबद्ध कर दिया है।

वक्तव्य—ग्रन्थकार की उक्त प्रतिज्ञा के अनुसार लक्षणों की समानता प्रदर्शन कराने के उद्देश्य से सर्वत्र चरक, सुश्रुत, वाग्भटादि के उद्धरणों का यहां तत्-तत् अवसरपर समावेश कर दिया गया है। वास्तव में कविवर लोलिम्बराज ने कविता के प्रवाह में आकर कहीं भी शास्त्र का उल्लंघन नहीं किया है ॥ ५५ ॥

मङ्गलाचरणम्

अधरन्यक्कृतबिम्बा जितशशिबिम्बा मुखप्रभया।
गमने सुखदविलम्बा विपुलनितम्बा शिवा शिवं कुर्यात् ॥५६॥

टीका—जिसने अपने रक्ताभ अधरोष्ठों के द्वारा बिम्बफल को लज्जित कर दिया है, जिसने अपने मुख की कान्ति के द्वारा चन्द्र बिम्ब को जीत लिया है, धीरे-धीरे सुख पूर्वक गमन करने वाली तथा स्थूल नितम्बोंवाली पार्वती हमारा कल्याण करे।

वक्तव्य—प्राचीन कवि परम्परा के अनुसार वैद्य कवि ने ग्रन्थ समाप्ति में स्मरणात्मक मङ्गलाचरण कर अपनी आराध्य देवी की वन्दना की है।

परिचय

समस्तपृथ्वीपतिपूजनीयो दिगंगनाश्लिष्टयशःशरीरः।
गुणिप्रियं ग्रन्थममुं व्यतानील्लोलिम्बराजः कविपातशाहः ॥५७॥

इति श्रीमल्लोलिम्बराजकृतो वैद्यावतंसः समाप्तः।

टीका—समस्त राजाओं के पूजनीय, दिशारूपी नायिकाओं ने जिसके यशरूपी शरीर का आलिंगन किया है अर्थात् दिगन्त व्यापी यश वाले कवि-चक्रवर्ती लोलिम्बराज ने गुणज्ञनों के प्रिय 'वैद्यावतंस' नामक इस ग्रन्थ की रचना की।

इति श्री वैद्य ब्रह्मानन्दत्रिपाठिकृता पदार्थप्रकाशिनी टीका समाप्ता।

परिचयः

पूतात्मा· सुमतिः सुधीकुलजनिः प्रज्ञावतां शेवधिः
स: श्रीमान् मुरलीधरोऽतिकुशलो मन्त्राऽऽगमज्ञोऽभवत् ।
तस्माच्छीलयुतोमनोरथबुधस्तारादिदत्तस्ततः
सन्मान्यां शुभवैद्यरत्नपदवीं धत्ते त्रिपाठी च यः ॥ १ ॥

तारादत्तसुतोविनीतचरितः साहित्यशास्त्रोदधौ
आयुर्वेदविधौच गाढरतिमान् पीयूषपाणिः स्वयम् ।
खिस्ते श्री वटुकादिनाथ गुरुतः साहित्यविद्यां शुभां
ब्रह्मानन्दबुधः पपाठ सुतरां सत्काव्यलीलावतीम् ॥ २ ॥

कूर्माद्रौ नयनीसरोवरमिति ख्यातञ्च यन्मण्डलं
तस्यैवास्ति समीपवर्ति सुमहद् भीमाभिधानं सरः ।
प्राक्तस्यास्ति शिलावटीति विदितो ग्रामोऽभिरामोद्विजैस्-
तस्मिन् ब्रह्मकुटी मदीयवसतिर्यानिर्मिता पूर्वजैः ॥ ३ ॥

आयुर्वेदविदांवरश्चरकविद्यश्चाग्निवेशायते
यः सच्छास्त्रविचारचिन्तनपटुर्विद्वत्सु लब्धादरः ।
सोऽयं श्रीगुरुलालचन्द्रविबुधस्तस्मान्मया या मतिः
सम्प्राप्तास्ति तया करोम्यभिनवां टीकां सदर्थान्विताम् ॥ ४ ॥

द्रव्यं स्थावर जङ्गमं यदखिलं दैवप्रपञ्चोर्जितं
तद्वक्तुं विधिपूर्वकं नहि विधिः शक्तः क्व पुंसां कथा ।

तस्माद् वैद्यवरः सुशास्त्रनिपुणो लोलिम्बराजः कविः
संक्षेपेण चकार वैद्यमहितं वैद्यावतंसं नवम् ॥ ५ ॥

प्रकाशिनी पदार्थानां बोधिनीस्वल्पधीमताम् ।
वैद्यावतंसे टीकेयं वैद्यतोषाय जायताम् ॥ ६ ॥

रामयुग्माऽभ्रयुग्मेऽब्दे मार्गे धवलपक्षगे ।
तृतीयायां गुरौ साङ्गा टीका मे पूर्णतामगात् ॥ ७ ॥

